RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 अंक : 12 प्रकाशन तिथि : 25 नवम्बर कुल पृष्ठ : 36 प्रेषण तिथि : 4 दिसम्बर, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- वार्षिक : 150/- रुपये पंचवर्षीय 700/- रुपये दस वर्षीय 1300/- रुपये

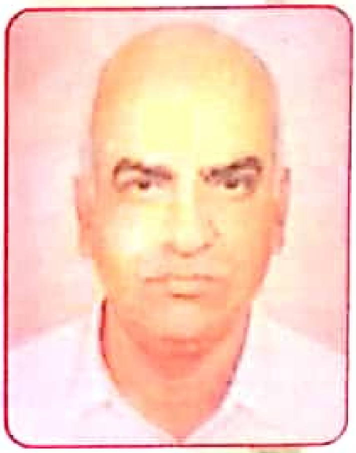

22 दिसम्बर : संघ स्थापना दिवस

व्यक्ति की स्वार्थ प्रधान मनोवृत्ति को सांघिक परिप्रेक्ष्य में समाजिक महत्त्वाकांक्षा में रूपान्तरित करना; अमूर्त और गूढतम ज्ञान व सिद्धान्तों को व्यावहारिक बनाकर मूर्त और सरल बनाना; साधारण व्यक्ति में असाधारणताएं निर्मित करना; भौतिक युग में कृतज्ञता का व्यवहार करना; उपदेशों की बजाय समाजिक कुरीतियों को व्यवहार से समाप्त करने का प्रयास करना; व्यक्तिगत उपलब्धियों को सामाजिक न्यास बना डालना; प्रेय से श्रेय को महत्त्वपूर्ण घोषित करना; बलिदान व त्याग को दैनिक जीवन का अंग बनाना तथा समाज चरित्र का निर्माण कर समाज शरीर की रचना करना; इसी दिशा में कर्मरत है श्री क्षत्रिय युवक संघ।

आओ! स्वधर्म पालन की राह पर मिलकर साथ-साथ चलें।

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 दिसम्बर, 2019

वर्ष : 56 अंक-12

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

समाचार संक्षेप		04
चलता रहे मेरा संघ	श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
धर्म का वास्तविक स्वरूप	स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज	08
पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	श्री चैनसिंह बैठवास	12
मेरी साधना	प्रो. रूपसिंह लिम्बड़ी	15
कुण्डलिनी जागरण और आध्यात्मिक विकास	स्वामी यतीश्वरानन्द	19
विचार-सरिता (पञ्चाशत् लहरी)	श्री विचारक	22
महारावल सिद्धश्री देवराज जी	श्री रतनसिंह बडोड़ागाँव	24
अमर शहीद इकतीसी	श्री मदनसिंह सोलंकियातला	27
शक्तियों के योग की आवश्यकता है	आचार्य महाप्रज्ञ	28
प्रार्थना का स्वरूप	संकलित	30
अपनी बात		32

समाचार संक्षेप

छात्रशक्ति कार्यशाला :

श्री क्षत्रिय युवक संघ के अनुसांगिक संगठन श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन ने पू. आयुवानसिंहजी के जन्म शताब्दी वर्ष के अन्तर्गत छात्रशक्ति कार्यशाला का आयोजन 2 नवम्बर को संघशक्ति प्रांगण जयपुर में सम्पन्न किया। इसमें पूर्व एवं वर्तमान छात्र नेताओं को आमंत्रित किया गया था। अपने विद्याध्ययन काल में जिन्होंने छात्र संघ के चुनावों में सफलता पाई हो या चुनाव लड़ा हो तो यह स्पष्ट है कि उनमें नेतृत्व की क्षमता विद्यमान थी। उनमें से कुछ छात्र नेता तो राजनीति से जुड़ गए और वहाँ भी अपना स्थान बनाया। अन्य छात्र नेता गुमनामी में ही रह गए। अपनी नेतृत्व की क्षमता को अन्यत्र काम में नहीं ले सके। ऐसे सब लोग परस्पर मिलें और अपनी उस क्षमता का समाज हित में कैसे सदुपयोग हो सके, इस पर विचार करें। जो अभी भी छात्र राजनीति से जुड़े हुए हैं, वे भविष्य के छात्र संघ चुनावों में सहयोगी बनकर नये नेतृत्व को उभारने का प्रयास करें, जिनकी राजनीति में रुचि है वे भी परस्पर सहयोगी बनकर राजनैतिक दलों में पैर जमाने का प्रयास करें तथा अन्य सभी सामाजिक सरोकारों से जुड़कर समाज हित के विभिन्न कार्य करने में अपनी क्षमता का उपयोग करें। इस उद्देश्य से यह कार्यशाला रखी गई।

श्री क्षत्रिय युवक संघ का परिचय दिया गया। श्री क्षात्र पुरुषार्थ फाउण्डेशन का परिचयऔर हाल ही में संगठन द्वारा की गई सक्रिय कार्यवाई का परिचय दिया गया। उपस्थित छात्र नेताओं ने अपने विचार व्यक्त किए। राज्य सरकार के मंत्री श्री प्रतापसिंह खाचरियावास ने अपने छात्र राजनीति और राजनैतिक पृष्ठभूमि के अनुभव सुनाए। न्यूज 18 समाचार चैनल के राजस्थान के हैड श्रीपालसिंह शक्तावत ने वर्तमान राजनीति में हमारे समाज की भूमिका पर प्रकाश डाला। संघप्रमुख माननीय भगवानसिंहजी ने आयुवानसिंहजी के जीवन का परिचय प्रस्तुत किया तथा उनके जीवन से प्रेरणा लेकर जो करना है उसके अनुरूप कर्मरत होने की आवश्यकता बताई।

ऐसी कार्यशालाएँ विभिन्न स्थानों पर सम्पन्न की जाए और इन सभी के साथ परस्पर सम्पर्क बनाए रखा जाए, इसके लिये श्री रामसिंह चरकड़ा को दायित्व सौंपा गया।

आरक्षण, आर्थिक आधार :

वर्षों की विभिन्न संगठनों की कोशिशों के परिणाम स्वरूप वर्तमान केन्द्र सरकार ने अब तक आरक्षण से वंचित वर्ग में आर्थिक रूप से पिछड़े वर्ग को 10 प्रतिशत आरक्षण देने की घोषणा की। इस घोषणा में 8 लाख की सीमा निश्चित की गई, जिससे कम वार्षिक आय के परिवार इसमें सम्मिलित हैं। लेकिन साथ में दो ऐसी बेतुकी शर्तें लगा दी गई जिससे इस आरक्षण का लाभ मुश्किल से 10 प्रतिशत लोगों को भी मिलेगा, इसमें भी संशय है। इसके विरुद्ध राज्य सरकार में इन शर्तों को हटाने का संघर्ष प्रारम्भ किया गया। बड़े व्यवस्थित, शांतिपूर्ण और निरंतर सक्रियता के साथ किए गये संघर्ष का परिणाम मिला और ये भूखण्ड और जमीन की शर्तें हटा ली गई। अब यही संघर्ष केन्द्र सरकार से इन शर्तों को हटाने के लिये प्रारम्भ किया जा रहा है।

विभिन्न समारोह :

समाज में विभिन्न संस्थाएँ समय-समय पर समारोहों का आयोजन करती रहती है। राजपूत सभा जयपुर ने महाराजा सवाई जयसिंहजी की 332वीं जयन्ती 3 नवम्बर को मनाई। केन्द्रीय जल शक्ति मंत्री गजेन्द्रसिंह समारोह के मुख्य अतिथि थे। समारोह में विभिन्न क्षेत्रों की प्रतिभाओं को सम्मानित किया गया। परबतसर में दीपावली स्नेह मिलन का समारोह श्री चारभुजा सेवा संस्थान ने आयोजित किया। माँ कालका शाखा जेठाणिया, मेहोजी शाखा मेंफा (बापिणी), सेखाला शाखा, दुबई शाखा, गंगासरा शाखा में दीपोत्सव मनाया गया। कच्छ में प्रतिभा सम्मान समारोह सम्पन्न हुआ।

चलता रहे मेरा संघ

(17 अक्टूबर, 2019 को पू. आयुवानसिंहजी का जन्म शताब्दी वर्ष प्रारम्भ होने के अवसर पर संघशक्ति प्रांगण में आयोजित कार्यक्रम में माननीय संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी का उद्‌बोधन।)

स्वर्गीय आयुवानसिंहजी से मेरा सम्पर्क एक-दो साल का था और यहाँ कुछ ऐसे लोग भी हो सकते हैं जिनका उनसे मेरे से अधिक सम्पर्क रहा है। उनकी पुस्तकें पढ़ने से, उनके लेख पढने से, श्री क्षत्रिय युवक संघ में उनके बारे में चर्चा सुनने से उनके साथ बिताये कुछ दिनों से जो स्मृतियाँ पनपी, वे यादें संजोये हुए हूँ।

प्रकृति में तीन गुण बताए जाते हैं। सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण। ये आदिकाल से हैं, आज भी हैं और सदैव रहेंगे। इनमें से किसी भी गुण का नाश नहीं होता। सतोगुण और तमोगुण, ये नदी के दो किनारे समान हैं। जैसे नदी के किनारे कहीं आते जाते नहीं, एक दूसरे से मिलते नहीं और नदी इनके बीच बहती रहती है। ऐसे ही सतोगुण व तमोगुण निष्क्रिय रहते हैं, सक्रिय रहता है रजोगुण। रजोगुण जब सतोगुण की ओर उन्मुख होता है तो एक विशिष्ट शक्ति का निर्माण होता है जिसको दैवी शक्ति कहते हैं। वही रजोगुण यदि तमोगुण के साथ मेल कर लेता है तो आसुरी शक्ति, राक्षसवृत्ति का निर्माण होता है। आयुवानसिंहजी के बारे में जो सुना है, पढा है, देखा है, मुझे लगता है वे रजोगुण के प्रतीक थे, जहाँ इच्छा है और क्रिया है। जहाँ इच्छा होती है, वहाँ क्रिया होती ही है। उनका पूरा जीवन इच्छा और क्रिया का प्रतीक बन गया। आयुवानसिंहजी के जीवन वृत्त पर पढी और सुनी जितनी जानकारी थी, वह आपको विस्तार से बताई गई। यह भी बताया गया कि इस शताब्दी वर्ष में कौन-कौन से कार्यक्रमों का आयोजन होगा। संघ के साहित्य के साथ-साथ उनका साहित्य भी जन-जन तक पहुँचाने का कार्यक्रम रहेगा। उनकी एक पुस्तक का नाम आया तो अवश्य लेकिन उसके बारे में बात अधिक नहीं हुई। वह पुस्तक है 'राजपूत और भविष्य'। मैंने कई बार यह पढी है और मैं अनुभव करता हूँ कि क्षत्रिय युवाओं को यह पुस्तक अवश्य पढनी चाहिए।

जब श्री क्षत्रिय युवक संघ प्रारम्भ हुआ था तब देश की परिस्थितियाँ भिन्न थी। आजादी पूर्व गुलामी का इतना जबदरस्त प्रभाव था कि कहा जा सकता है-'झुक-झुक के हमने चूम ली कदमों की धूल को।' हमारे शासकों के नीचे झुक-झुक कर हम झुके ही रहे। पाँच दिन पहले बंगाल के राज्यपाल यहाँ आए थे। वे झुके हुए से दिखाई दे रहे थे। मैंने उनको पूछा कि आप इतने झुक क्यों गए हैं। उन्होंने कहा-'मीलॉर्ड, मीलॉर्ड बोलकर झुकते-झुकते मेरी कमर ही टेढी हो गई।' हमने भी अपने शासकों के सामने झुक-झुक कर अपने आत्मविश्वास को ही झुका दिया। ऐसे में इस कौम में प्राण फूंकना और इस कौम के माध्यम से पूरे भारतवर्ष में जागृति लाना और भारतवर्ष के माध्यम से पूरे संसार में, मानवता में जागृति लाना है। प्राणीमात्र के लिये क्षत्रिय का जीवन कैसा होता है, ऐसे संस्कारों का सिंचन कर लोगों को मार्ग दिखाना है।

कुछ लोग क्षत्रिय नाम से चिढते हैं, क्षत्रिय संगठन से चिढते हैं और इसे संकुचित बताते हैं। तनसिंहजी ने जो लिखा है उसके अनुसार तो ऐसे लोग नादान हैं, क्षत्रिय का जीवन जब खुद का जीवन है ही नहीं, उसका जीवन है ही औरों के लिये तो संकुचितता कैसी? क्षत्रिय के लिये न कोई सम्प्रदाय की बात है, न कोई जाति की बात है, न कोई देश के विशेष टुकड़े की बात है, न केवल देश की बात है, न केवल मानव की बात है, प्राणीमात्र के लिये जीने वाला क्षत्रिय है और उसी के लिये बनाया गया यह संगठन है।

पूज्य तनसिंहजी ने और पूज्य आयुवानसिंहजी ने इस संगठन की मजबूत नींव डाली है। संघ का अभी 73वाँ वर्ष चल रहा है। 73 वर्ष व्यक्ति के लिये बड़ी अवधि है लेकिन समाज के लिये यह कोई बड़ा समय नहीं है। आयुवानसिंहजी तो 50 वर्ष को ही पार नहीं कर सके। इस

उम्र में उन्हें जो करना था वह करके चले गए और उनकी स्मृति हमारे पास शेष है। ऐसे लोग संसार में आकर जो करते हैं वह किसी अकेली जाति के लिये नहीं, किसी अकेले देश के लिये नहीं, किसी अकेले सम्प्रदाय के लिये नहीं, संपूर्ण मानव जाति और प्राणीमात्र के लिये करते हैं। ऐसे ही लोगों को याद करना, उनकी जयन्ती मनाना सार्थकतापूर्ण है। आयुवानसिंहजी की जयन्ती चाहे बड़े रूप में हो, चाहे छोटे रूप में हो, चाहे शाखा स्तर पर हो, प्रतिवर्ष मनाई जाती रही है। कई बार शिविर के समय में जयन्ती आती है तो शिविर में भी मनाई जाती रही है। उनका स्मरण किया जाता रहा है।

जो रजोगुण है वह यदि राजपूत के हाथ से निकल जाए, उसके जीवन से निकल जाए तो राजपूत राजपूत ही नहीं रहता। दुकानों में सजाए हुए कार्टून के अन्दर कुछ सामान होता है। वह सामान उसमें से निकाल लिया जाए और खाली कार्टून दुकान में पड़ा रहे तो वह जगह ही रोकता है, उसकी कीमत कुछ नहीं होती। हजारों साल तक लड़ते-लड़ते कौम में थकान आ जाती है। हमारी कौम में थकान तो नहीं आई लेकिन अनेक घटनाओं से उसका रूप बदलता गया। महाभारत और उससे पहले भी युद्ध हुए हैं लेकिन क्षत्रियत्व बना रहा। कलियुग में गुप्तकाल को स्वर्णिम माना जाता है, वहाँ भी रजोगुण बना रहा है, लेकिन रज के साथ जब तक सत रहा है, तब तक क्षत्रिय में विकृतियाँ नहीं आई। तमोगुण ने हमारे ऊपर प्रभाव बनाना प्रारम्भ किया, तब से विकृतियाँ आनी प्रारम्भ हो गई। आज संघ की बात करते हैं तो बहुत से लोग तो ऐसे हैं जो कहते हैं क्या पुरानी बातें कर रहे हो? क्यों गुमराह कर रहे हो? समाज गुमराह हो चुका है, उसे राह पर लाना है। तनसिंहजी ने लिखा है-'गुमराह हठीलों के प्रांगण में मैं अलख जगाने आया हूँ।' संघ कार्य कितना कठिन है कि हठीले गुमराह समाज को राह पर लाना, अपना कर्तव्य निभाना सिखाना है।

तनसिंहजी और आयुवानसिंहजी ने बहुत समय तक साथ कार्य किया। उनका पत्र व्यवहार फाइलों में सुरक्षित पड़ा है जिसे देखकर उनके मधुर सम्बन्ध का चित्र स्पष्ट होता है। कुछ लोगों को उनके सम्बन्धों में विरोधाभास दिखाई देता है और हो सकता है कुछ सीमा तक वैचारिक मतभेद रहा हो लेकिन उनकी आत्मीयता कितनी थी, यह पत्रों से स्पष्ट है। उसी की याद दिलाना आवश्यक है। जहाँ-जहाँ संघ का कार्यक्षेत्र है, वहाँ यह बताया जाना आवश्यक है कि वर्तमान युग में क्षत्रियों को मार्ग दिखाने के लिये उन्होंने जो कार्य किया वह विलक्षण है। उम्र उन लोगों ने कम पाई पर कम उम्र में भी उन लोगों ने वह काम कर दिया जिसके लिये हम उन्हें याद करते हैं। सौवां वर्ष प्रारम्भ हुआ है। राजपूत और भविष्य को पूरे समाज में पहुँचाने के लिये यहाँ जो उपस्थित हैं वे सभी सहयोग करें और जहाँ जाएँ वहाँ यह संदेश दें यह संघ आपसे अपेक्षा करता है।

आयुवानसिंहजी में अनेक प्रतिभाएँ थी, उन प्रतिभाओं के प्रकटीकरण में जैसे थोड़ी कंजूसी रही, समय नहीं मिला। योजना बनाने की अद्‌भुत प्रतिभा उनमें थी। योजना बनाने वाला वर्तमान समय में, राजपूत समाज में, पूरी शताब्दी में ऐसा कोई हुआ नहीं। पू. तनसिंहजी ने संघ की रजत जयन्ती पर लेख में लिखा है कि इस देश को आगे ले जाने वाले होंगे, उनमें संघ का नाम अग्रिम पंक्ति में होगा। पिछले 20-25 वर्षों का मेरा अनुभव कहता है कि संघ के अलावा और कोई चारा नहीं। चाहे यह छोटे मुँह बड़ी बात लगे, पर इस बात पर मेरा पूर्ण विश्वास है। आयुवानसिंहजी की जो प्रतिभाएँ हैं उनके लिये विभिन्न प्रकार के प्रकल्प, छोटे-छोटे संगठन बनाए जाने चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि सब संघ में आने वाले लोग ही उनमें हों। समाज में ऐसी बहुत सारी प्रतिभाएँ छिपी पड़ी हैं जो समाज के काम आ सकती हैं। सबकी अपनी सीमा है, अपनी-अपनी क्षमता है। राजनीति में भी, भारत की अर्थव्यवस्था में भी, ज्ञान के मार्ग पर भी खोज-खोजकर उन प्रतिभाओं के संगठन बनाएँ। वैसे तो कभी भी जमाना कमजोर का नहीं रहा है, पर आज का युग आपा-धापी का युग है। कौन कहाँ जा रहा है, यह स्वयं उसको भी ठीक पता नहीं। जिनको पूरा पता नहीं है, वे भी अपने आपको

पायनियर बताते हैं। अनेक संगठन खड़े हो गए हैं। अनेक संगठनों की भी आवश्यकता है। अपने-अपने क्षेत्र में जिसकी जैसी प्रतिभा है वो काम करें। क्षत्रिय युवक संघ अपना कार्य करता रहेगा क्योंकि वह आधारभूमि है, उसी से सभी संगठनों का भोजन निकलेगा। वह भोजन ही उन संगठनों का प्राण होगा।

आज हम आयुवानसिंहजी की 99वीं जयन्ती मना रहे हैं। एक वर्ष तक शताब्दी वर्ष में जिन विभिन्न कार्यक्रमों की सूचना दी गई है, उस सम्बन्ध में मैं एक बात और जोड़ना चाहता हूँ कि क्योंकि यह शताब्दी वर्ष चल रहा है तो इस वर्ष में कम से कम 100 जगह पर ऐसे कार्यक्रम किए जाएँ। जैसा पहले बताया गया था कि आयुवानसिंहजी की पुस्तक 'मेरी साधना' पर सभी शाखाओं में पूरी चर्चा आवश्यक रूप से की जाए। ऐसे ही 100 कार्यक्रम करने का विचार अभी-अभी आया। यह साधन बने कि बहुसंख्यक लोग संघ को जानें, आयुवानसिंहजी को जाने। ये ही प्राण फूंकने वाले हैं और प्राण फूंकने वालों को भूल जाते हैं तो मूल खो जाता है, जड़ ही नहीं है तो पत्ते क्या होंगे। हमको भी आयुवानसिंहजी की जड़ को पकड़कर रखना है और आगे बढना है।

अभी संघ को 73 वर्ष हुए हैं। यह संघ का बाल्यकाल है। एक पौधे का बीज से अंकुरित होकर पल्लव पनपाना है। इसके बाद इसमें डालियाँ बनेंगी, उनमें फूल लगेंगे, उनके फल आएँगे, विशाल वटवृक्ष होगा। बीज डाला जा चुका था, अंकुरित हो चुका, अब यदि हम किसी प्रकार की कोताही बरतेंगे तो हम कृतघ्न कहलाएँगे। जिन्होंने इस प्रकार का बीज डाला है, अपने जीवन में खून-पसीने से सींचा है, कठिनाइयों से गुजरे हैं, तपस्या की है, कोताही की तो उनके प्रति विश्वासघात होगा। उन्होंने हमारे ऊपर विश्वास किया और हमें उनके विश्वास पर खरा उतरने का विश्वास दिलाना चाहिए। उन्हीं के रूप बनकर आप सब यहाँ विराजमान हैं, आज हम उनको यह विश्वास दिलाएँ कि जो आपके सपने थे, उन सपनों को पूरा करने में किसी भी प्रकार की कमी नहीं रखेंगे।

श्री क्षत्रिय युवक संघ शेखावाटी से प्रारम्भ हुआ। बीज पड़ा था पिलानी में। शाखाएँ फैली शेखावाटी में और फिर धीरे-धीरे आगे बढता रहा जो सन् 57 तक राजस्थान में दूर-दूर तक फैल चुका था। जहाँ-जहाँ कार्य किया गया, वहाँ-वहाँ प्रसारित हुआ। सन् 55 में व 56 में भूस्वामी आंदोलन हुआ। आंदोलन की अवधि में गुजरात से समाज का एक दल हरिसिंहजी गोहिल के नेतृत्व में आया। उद्देश्य था कि राजस्थान के हमारे भाई इतना बड़ा आंदोलन कर रहे हैं उसके कारण को समझें तथा जो कुछ सहयोग हम कर सकते हैं वह करें। यहाँ आंदोलन का बहुत ही व्यवस्थित व अनुशासित संचालन देखकर वे प्रभावित भी हुए और रुचि लेकर गहराई से जाँच की तो पता चला कि क्षत्रिय युवक संघ नामक संगठन के संस्कारित स्वयंसेवकों के माध्यम से यह सब वांछित रूप से चल रहा है। श्री हरिसिंहजी ने ऐसे कार्य को गुजरात में भी किए जाने की आवश्यकता जताई और गुजरात में संघ कार्य प्रारम्भ करने के लिये आमंत्रित किया। सन् 1957 में भावनगर में संघ का पहला शिविर हुआ और गुजरात में तब से संघ कार्य चल रहा है। आयुवानसिंहजी भी गुजरात कई बार गये।

पू. आयुवानसिंहजी की एक और विलक्षणता मुझे याद आ रही है। गरीब से गरीब व्यक्ति से लेकर राजा-महाराजाओं तक उनकी अच्छी पकड़ थी, यह असाधारण बात है। जो गरीबों के साथ रहते हैं वे गरीबों की बात करते हैं, जो धनवानों के साथ रहते हैं वे धनवानों की बात करते हैं। परन्तु उनकी यह विशेष प्रतिभा थी कि वे सभी की बात करते थे। इसी कारण से पूरे राजस्थान में उस समय राजनीति से सम्बन्धित जितने निर्णय लिए गये, उनमें उनका विशिष्ट योगदान रहा। राजनीति में यदि हम पिछड़ते हैं तो और अधिक पिछड़े हो जाएँगे, अत: वर्तमान समय की राजनीति क्या हो, उसको उन्होंने समझा और समझाया।

बलवान बने बिना कोई संघर्ष नहीं हो सकता और संघर्ष के बिना क्षत्रिय, क्षत्रिय कैसे रह सकता है, यह आयुवानसिंहजी ने कही। वे बल कितने प्रकार के हैं, कौन-कौनसी शक्तियाँ हैं, वे उन सब के उपासक थे और

(शेष पृष्ठ 26 पर)

गतांक से आगे

धर्म का वास्तविक स्वरूप

- *स्वामी अड़गड़ानन्द जी महाराज*

6. गीतोक्त साधना :

भगवान कहते हैं- ***'यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये।।'*** (गीता, 8/11) जिसे प्रत्यक्षदर्शी महापुरुष अविनाशी कहते हैं, जिनको चाहने वाले ब्रह्मचर्य आदि कठोर व्रतों का पालन करते हैं, जो हृदय में धारण करने योग्य है, उस पद को मैं भली प्रकार कहूँगा- ***'सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्।।'*** (गीता, 8/12) अर्थात् इन्द्रियों के सभी दरवाजों को संयमित करके मन को हृदय देश में स्थिर करके, मस्तिष्क में योगविधि को भली प्रकार धारण करके अर्थात् गीतोक्त विधि को धारण करके ***'ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म'*** (गीता, 8/13)- ॐ, जो अक्षय ब्रह्म का परिचायक है, उसका जप करते हुए, ***'मामनुस्मरन्'***- मेरे स्वरूप का ध्यान धरते हुए, साधना इतनी उन्नत हो गयी कि ***'त्यजन्देहम्'***- जिस क्षण देहाध्याय का त्याग कर जाता है, ***'स याति परमां गतिम्'***- वह तत्क्षण परम गति को प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार भगवान ने नाम ओम् का बताया और ध्यान अपना; क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ***'गुरुर्गरीयान्'***- गुरुओं के भी परम गुरु हैं। ध्यान सद्गुरु का ही किया जाता है क्योंकि भगवान को पाकर वह भी भगवत्स्वरूप हैं। वही तत्त्वदर्शी हैं। यही गुरु का गुरुत्व है।

भगवान कहते हैं-यह गीता धर्ममय अमृत है। ***'ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते। श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः।।'*** (गीता, 12/20) अर्जुन! इस धर्ममय अमृत को जैसे-जैसे कहा गया, यथावत् जो आचरण करता है वह भक्तों में भी अति प्रिय, उत्तम भक्त मुझे मान्य है। अर्थात् पूरी की पूरी गीता धर्ममय अमृत है। भगवान कहते हैं- ***'ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहम्'*** (गीता, 14/27) अर्जुन! उस अविनाशी ब्रह्म का, अमृत का, शाश्वत धर्म का और उस अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ। अर्थात् सद्गुरु ही एकमात्र आश्रय है। जब तक सद्गुरु नहीं मिलते, निवृत्ति दिलाने वाला भजन आरम्भ ही नहीं होता।

7. धर्मशास्त्र गीता :

भगवान ने गीता को शास्त्र कहा- ***'इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयानघ।'*** (गीता, 15/20)- हे निष्पाप अर्जुन! इस प्रकार यह अति गोपनीय शास्त्र मेरे द्वारा कहा गया। इसे जानकर मनुष्य पूर्ण ज्ञाता, लोक में समृद्धि (गीता, 7/16) और परम श्रेय को प्राप्त कर लेता है। अतः योगेश्वर श्रीकृष्ण की यह वाणी स्वयं में पूर्ण शास्त्र है। भगवान कहते हैं- ***'यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।।'*** (गीता, 16/23)- जो पुरुष उपर्युक्त शास्त्रविधि को त्यागकर अपनी इच्छा से बरतता है, वह न सिद्धि को प्राप्त होता है, न परम गति को और न सुख को ही प्राप्त होता है। ***'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि।।'*** (गीता, 16/24) इसलिए अर्जुन! तेरे इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में कि मैं क्या करूँ, क्या न करूँ-इसके संपूर्ण समाधान में यह शास्त्र ही प्रमाण है। ऐसा जानकर शास्त्रविधि से नियत किये हुए कर्म को ही तुझे करना योग्य है।

भारतीय मनीषियों ने शास्त्र को सदैव दो दृष्टियों से लिखा है-एक तो इतिहास को संरक्षित रखना जिससे लोग पूर्वजों के पदचिन्हों पर चलते हुए मर्यादित जीवन जी सकें, संस्कृति का निर्वाह करते हुए सुखमय जीवन-यापन कर सकें, लेकिन केवल सुखमय जीवन-यापन कर लेने मात्र से कल्याण संभव नहीं है क्योंकि मानव-जीवन जन्म और मृत्यु के बीच का एक पड़ाव ही तो है। किसी ने सुव्यवस्थित जीवन काट ही लिया तो इसमें उसका कल्याण कदापि नहीं है। इसीलिए मनीषियों ने शास्त्र-रचना का दूसरा दृष्टिकोण अध्यात्म अपनाया। हर जीव माया के आश्रित है। इसे माया के चंगुल से निकाल कर आत्मा की अधिकृत भूमि में खड़ा

कर देना, आत्मा को जागृत कर परम तत्व परमात्मा तक की दूरी तय करा देना, परमात्मा का दर्शन, स्पर्श और स्थिति दिला देना अध्यात्म की पराकाष्ठा है। इसलिए महर्षि वेदव्यास ने गौरवपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ महाभारत के लेखन में भारत की योग साधना कैसी?-इसे गीता के रूप में अलग से प्रस्तुत किया। गीता की स्तुति करते हुए उन्होंने निर्णय दिया- ***'गीता सुगीता कर्तव्या'***- गीता को भली प्रकार मनन करके हृदय में धारण करना चाहिए। यह स्वयं भगवान के श्रीमुख से निःसृत वाणी है। जिन भगवान को हम प्रसन्न करना चाहते हैं, उनके श्रीमुख की वाणी है, उनका आदेश है। ***'किमन्यै शास्त्रसंग्रहैः'***- फिर अन्य शास्त्रों के संग्रह की क्या आवश्यकता है।

8. रामचरितमानस में धर्म :

मानस के अनुसार ***'धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना।'*** (मानस, 2/94/5) अर्थात् सत्य के समान दूसरा कोई धर्म नहीं है जिसकी प्रशंसा वेद, शास्त्र और पुरणों में है। प्रश्न स्वाभाविक है कि सत्य क्या है? तो ***'ब्यापकु एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन घन आनँद रासी।।'*** (मानस, 1/22/6)- वह परमात्मा व्यापक है, कण-कण में है, एक है, एक से सवा कभी हुआ नहीं, वह वृहद् है इसलिए ब्रह्म है। वह अविनाशी है, उसका कभी विनाश नहीं होता। वह परमात्मा ही सत्य है, चैतन्य है। कोई संकल्प बाद में करता है, परमात्मा पहले से ही जानते हैं कि वह क्या करने जा रहा है। ***'घन आनँद रासी'***- वह असीम आनन्द की राशि है। मनुष्यको आनन्द चाहिए, आनन्द वहाँ पर है। वह है तो सर्वत्र पर दिखाई नहीं देता। उनके शोध की स्थली कहाँ है? तो कहते हैं- ***'अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी।'*** (मानस, 1/22/7)- ऐसा परमात्मा जो सत्य, चैतन्य, आनन्द की राशि है, वह सबके हृदय देश में निवास करता है, द्रष्टा रूप में स्थित है। जैसे-प्रकाश में कोई धार्मिक ग्रन्थ पढ़े या मनोरंजन करे, प्रकाश का काम तो प्रकाश देना है। उसी प्रकार भगवान विकारों से निर्लेप रहकर सबके हृदय में निवास करता है। हृदय देश में ऐसे परमात्मा के होते हुए भी सारा संसार दीन है, दुःखी है। इस दुःख निवारण के लिये, असीम आनन्द की प्राप्ति के लिये उन परमात्मा को विदित कैसे किया जाए?-इसका केवल एक उपाय है- नाम जप। ***'नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें।।'*** (मानस, 1/22/8)- पहले तो नाम का निरूपण करना चाहिए कि नाम है क्या? जपा कैसे जाता है? और जब समझ में आ जाए तो दिन-रात उसके लिये यत्न करें, जप प्रारम्भ करें। सतत् अभ्यास के फलस्वरूप वह परमात्मा प्रकट हो जायेगा जैसे रत्न की पहचान होने पर उसकी कीमत झलकने लगती है। ***'राम नाम में अन्तर है। कहीं हीरा है, कहीं पत्थर है।'*** नाम वही है, किसी ने चौबीस घण्टे जप किया, कुछ कंकड़ हाथ लगे। उसी नाम को किसी ने उतना ही जपा, हीरे हाथ लग गये। नाम जपने की विधि महापुरुषों के द्वारा जागृत होती है, उनके निर्देशानुसार चलना ही भजन है। केवल श्रद्धा समर्पित कर नाम जप के द्वारा उन परमात्मा को, जो आपके हृदय देश में है, जागृत करना भर है। उन परमात्मा के प्रति समर्पण और उनमें श्रद्धा स्थिर करना धर्माचरण है।

नाम जप से भगवान का रूप प्रकट हो जाता है। अब आप ध्यान धरें, ध्यान होने लगता है। नाम से भगवान का रूप आने लगता है, वह आपकी साज-सँभाल करने लगता है। देख-रेख करता है, आपको भजन में बैठाता है, लगाता है, चलाता है, खतरों से अवगत कराते हुए आपका मार्गदर्शन करता है जिसका नाम है लीला कि भगवान साधक को कैसे समझाते हैं। ज्यों-ज्यों साधक का स्तर उठता जाता है, उसी ऊँचाई से भगवान उसे बताते हैं। उनके निर्देशन में चलते हुए साधक भगवान तक की दूरी तय कर ले जाता है। इसके पश्चात् भगवान का दर्शन, उनका स्पर्श और उनमें स्थिति मिल जाती है। भगवान स्वयं साधक में दृष्टि बन जाते हैं, सामने अपार विभूतियों के साथ स्वयं खड़े हो जाते हैं जिसका नाम है धाम अर्थात् स्थिति-केवल्य-स्थिति का प्राप्त होना! यही है परम श्रेय की प्राप्ति। इसी के साथ आवागमन से मुक्ति मिल जाती है, मोक्ष पद

मिल जाता है, इसलिए सबको चाहिए कि नाम जप करें, एक परमात्मा में श्रद्धा स्थिर करके चलते-फिरते, उठते-बैठते हर समय भगवान का नाम-जप चलते रहना चाहिए। नाम जप के लिये कोई जगह अपवित्र नहीं है। आप फूल बिछाकर बैठ जायँ, इत्र छिड़क लें किन्तु यदि मन में श्रद्धा नहीं है, समर्पण नहीं है, भरत की तरह ***'गदगद गिरा नयन बह नीरा।'*** की प्रेमपूर्ण स्थिति नहीं है तो वह स्थान अपवित्र है, अभी वह नाम जप अपूर्ण है, अधूरा है।

9. भजन एक परमात्मा का और उसके अतिरिक्त कोई पूजनीय नहीं है :

भगवान ने काकभुसुण्डी को दर्शन दिया तो वे बड़े उलझन में पड़े कि मेरे ऐसे निकृष्ट प्राणी पर भी प्रभु का इतना आग्रह है! कारण क्या है? भगवान ने समाधान करते तथा उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा कि -

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा।।
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता।।
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई।।

(मानस, 7/86/1-3)

अर्थात् एक पिता के बहुत से लड़के हैं। कोई पंडित है, कोई तपस्वी है, कोई ज्ञाता है, कोई धनवान है, दानदाता है, कोई सर्वज्ञ है, कोई धर्मरत है- इन सब पर पिता का प्रेम समान ही होता है किन्तु उनमें से कोई ऐसा भी है-

कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा।।
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना।।

(मानस, 7/86/4-5)

कोई मन, क्रम, वचन से पिता का भक्त होता है। ***'सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना।'***- वह पिता को प्राण के समान प्यारा होता है यद्यपि वह सब लक्षणों से हीन है। उसमें केवल एक गुण है कि वह पिता का भक्त है।

एहिं बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते।
अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया।।

(मानस, 7/86/6-7)

इस विधि के अनुसार तिर्यक (पशु-पक्षी), देवता, मनुष्य, असुर, जड़-चेतन- यह संपूर्ण विश्व मेरे द्वारा उत्पन्न है। इसलिए इन सब पर मेरी समान रूप से दया है। किन्तु-

तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजै मोहि मन बच अरु काया।।
पुरुष नपंसुक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्बभाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।।

(मानस, 9/87/क)

वह पुरुष हो, नपंसुक हो, नारि हो, चर-अचर कोई भी जीव हो, कहीं जन्मा हो, कुछ भी कहलाता हो, यदि कपट त्यागकर संपूर्ण भाव से मुझे भजता है, वह मुझे परम प्रिय है। यदि कोई मेरा भजन नहीं करता तो ***'भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई।'*** (मानस, 7/85/9)- यदि वह मेरी भक्ति से विहीन है, तो सृष्टिनिर्माता विधाता ही क्यों न हो, मुझे वह उतना ही प्रिय है जितना सब जीव। और ***'भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी।।'*** (मानस, 7/85/10) भक्ति से संयुक्त अत्यन्त नीच प्राणी भी मुझे अपने प्राणों के समान प्रिय हैं। भगवान सार्वभौम हैं, सर्वत्र हैं, चराचर में कोई कहीं जन्मा हो, कुछ भी कहलाता हो, आस्तिक-नास्तिक इत्यादि उपाधियाँ मनुष्य आपस में देता-लेता रहता है, भगवान के यहाँ इनसे कोई अन्तर नहीं पड़ता। भगवान ने तो आपको आस्तिक-नास्तिक नहीं कहा। जहाँ भी है, अब तो मानव तन में हैं, श्रद्धा से जहाँ जिसने स्मरण किया, उसका अभ्युदय होने लगता है। जगतरूपी रात्रि में रहते हुए सभी में उस परमात्मा का क्षीण प्रकाश विद्यमान है। वह पूर्ण प्रकाश के रूप में परिवर्तित होने लगता है, अन्त में दर्शन, स्पर्श और स्थिति मिल जाती है। भगवान के यहाँ केवल श्रद्धा लगती है। ***'श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।'*** (गीता, 4/39)- श्रद्धावान और संयतेन्द्रिय उस ज्ञान को प्राप्त कर लेता है। अतः एक परमात्मा के प्रति श्रद्धा और उनमें समर्पण ही धर्माचरण है।

मानस का समापन करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी ने निर्णय दिया-

सोइ सर्बग्य गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता।।
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरन जा कर मन राता।।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धान्त नीक तेहिं जाना।।
सोइ कबि कोबिद सोइ रणधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा।।

(मानस, 7/126/1-4)

वह सर्वज्ञ है, गुणी है, ज्ञाता है, पण्डित है, दानदाता है, धर्मज्ञ है। कौन? ***'राम चरन जा कर मन राता।'***- राम के चरणों में जिसका मन अनुरक्त है।

नर बिबिध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी राम पद अनुरागहू।।

(मानस, 3/36)

गोस्वामी जी कहते हैं कि मनुष्य नाना प्रकार के कर्म करता है, वह अधर्म है। बहुत से मत-मतान्तर शोक देने वाले हैं। इन सबको त्यागकर एक परमात्मा राम के चरणों में अनुराग करें। यही धर्म है। इसी एक परमात्मा की शोध और उसकी प्राप्ति की क्रमबद्ध साधना देने से भारत विश्वगुरु था। इस साधना में मनुष्य मात्र का प्रवेश है। भगवान ने कहा- ***'अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।'*** (गीता, 4/36) अर्जुन! सृष्टि के सारे पापियों से भी तू अधिक पाप करने वाला हो तब भी इस गीतोक्त ज्ञानरूपी नौका द्वारा निःसंदेह पार हो जाएगा।

उपसंहार :

शिक्षा से संसार प्रगति करता आया है। शस्त्र-कौशल से संसार सुरक्षित रहता आया है। लेकिन भारत में शस्त्रविहीन सुरक्षा.....। शिक्षाविहीन समाज कि शास्त्र पढ़ोगे तो नरक। जो भारतीय इतने शूरवीर कि तलवार से तो नहीं डरे, मौत से नहीं डरे; आग में कूद गये, नहीं डरे; लेकिन धर्म से काँप गये। किसी ने रुढ़ियों को धर्म-धर्म कहा तो भाग खड़े हुए। पूछा भी नहीं कि धर्म क्या है? अतः धर्म की जानकारी के लिये आप गीता भाष्य 'यथार्थ गीता' की तीन-चार आवृत्ति करें तो सारी भ्रान्तियों का निराकरण हो जाएगा।

'यथार्थ गीता' भगवान की प्रेरणा से लिखी गयी है। इसे जीवन में ढालकर आप सभी सुख-शान्ति व समृद्धि के साथ सदा रहने वाला जीवन और धाम प्राप्त करें। यह 'यथार्थ गीता' सभी बच्चों, नवयुवकों, वयोवृद्धों, स्त्री-पुरुष किंवा मानव-मात्र के पास होनी चाहिये जिससे सभी दुःख-निवारण, धन-धान्य, ज्ञान-जिज्ञासा इत्यादि कामनाओं की पूर्ति करते हुए भगवान का दर्शन, उनका स्पर्श और उनमें स्थिति पाकर जीवन को सार्थक बना सकें- ***'जो इच्छा करिहहु मन माहीं। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाहीं।'*** (मानस, 7/113/4)

एक परमात्मा का उपदेश विश्व के जिन-जिन महापुरुषों ने दिया, वे सभी गीता के ही संदेशवाहक हैं क्योंकि सर्वशक्तिमान एक परमात्मा की शोध उन सबसे बहुत पहले गीता में है। एक परमात्मा कहना बहुत आसान है, किन्तु उस परमात्मा को अपने हृदय में जागृत करने, परमात्मा से बातें करने, उनका दर्शन करने, उनका स्पर्श और उनमें स्थिति प्राप्त करने की क्रमबद्ध साधना गीता में है, और कहीं नहीं है। मानव-तन पाकर भी यदि आपने गीतोक्त साधना को, जिसमें आरम्भ का नाश नहीं है, उस विधि को जागृत नहीं कर लिया जिससे भगवद्पर्यन्त दूरी तय होती है तो यह आपकी अपनी अपूरणीय क्षति है। किसी पर एहसान न भी करें तब भी अपने बाल-बच्चों, परिजनों तथा समाज के विकास के लिये अवश्य पढ़ें- 'यथार्थ गीता'।

।। ॐ श्री सद्गुरुदेव भगवान की जय ।।

अपने को पवित्र इसलिए मत करो कि तुम अहंकार को तृप्त करना चाहते हो, इसलिए करो कि लोक देखें कि जिस धन वैभव के जाल में वह फँसा है, उसमें वह कितना निरीह है और वास्तव में मनुष्य कितना ऊँचा उठ सकता है- कहाँ तक जा सकता है यह मनुष्य।

- रांगेव राघव

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

धरती पर जब पाप बढ जाता है, अधर्म का बोलबाला होने लगता है, विधर्मियों की उच्छृंखलता और दुष्टों की दुष्टता बढ जाती है, अत्याचार और अन्याय से लोगों में त्राहि–त्राहि मच जाती है, तब उनकी रक्षा के लिये उनका सहारा बनकर कोई न कोई, किसी न किसी रूप में इस धरती पर अवतरित होता है जिसे हम अवतार, महापुरुष, मसीहा, देवदूत, पैगम्बर जो चाहे रूप दें, जो चाहें कहें।

यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मानं सृजाम्यहम्।।

सज्जनों की रक्षा करने के लिये, पाप कर्म करने वालों का विनाश करने के लिये तथा धर्म की पुन: स्थापना करने के लिये वे समय–समय पर जरूरत पड़ने पर इस धरा पर आते रहते हैं।

परित्राणाय साधूनां, विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय, सम्भवामि युगे युगे।।

वे जब इस धरा पर जन मानस को समयानुकूल नया दिशा–दर्शन देने लगते हैं, उनका मार्गदर्शन करने लगते हैं तो उनके समकालीन रूढीवादियों की जड़ें कमजोर होने लगती हैं, उनकी नींव हिलने लगती है तो वे विरोध करने लगते हैं। ऐसे तत्वों से उनका सामना होता है और उन्हें उनके विरोध को सहन करना पड़ता है। हम विगत इतिहास को देखें तो ज्ञात होगा कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम, योगेश्वर श्रीकृष्ण, ईसा मसीह, मोहम्मद शाह, महावीर, बुद्ध, सुकरात किसका विरोध नहीं हुआ, तो फिर हमारी कौम के अग्रदूत इस मसीहा (पू. श्री तनसिंहजी) का भी विरोध क्यों नहीं होता? पूज्यश्री ने विरोध के सम्बन्ध में कहा– ''आँधियाँ आये और झुके नहीं, तूफान आये और टूटे नहीं, काँटे चुभे और रुके नहीं, आहें और आँसू निकले तो उन्हें पीकर मुस्करा दे, नफरत के प्याले पीकर उन्हीं प्यालों में प्रेम का जल भरकर जो मनुहार करते हों, संसार उन्हीं के अप्रत्याशित व्यवहार को देखने के लिये रुका करता है।''

समाज की बिखरी हुई सामाजिक शक्ति को एकता और विश्वसनीयता प्रदान करने के लिये पूज्यश्री तनसिंहजी अपनों की खोज में निकल पड़े। बिछुड़े हुओं को बुलाकर मेले लगने लगे। मेले में जो भी आया, पूज्यश्री ने कुंकुंम लगाकर उनका स्वागत किया, उन्हें गले लगाया, उनके लिये पलक पाँवड़े बिछाये, उनकी परवरिश की, अपनी छत्रछाया में उनको पनपाया, अपनत्व के प्यार से उनको सींचा, उन्हें पनपाया–फुलाया, इतना ही नहीं उन्हें अपने हृदय में जगह तक दी।

संघ में आने वाले, चाहे किसी कारण से संघ में आये हों, चाहे इसे अपना कुटुम्ब समझकर आये हों या अपना कोई स्वार्थ सिद्ध करने के लिये आये हों, या उनके आने का कोई और कारण रहा हो, कारण तो कोई भी हो सकता है, पर पूज्यश्री ने तो अपना समझकर उन्हें अपनाया, उन्हें अपना आत्मीय बनाया, अपना कुटुम्बी समझकर उनकी परवरिश की, उनका हर तरह से ख्याल रखा, पर वही बन्धु एक दिन पंछी की तरह कुटुम्ब छोड़कर उड़ चला, मेहमान की तरह चलता बना, बनजारे की तरह रात बसेरा कर आगे की राह ली और जाते–जाते सारा दोष पूज्यश्री को दे गया, उन्हीं के सिर पर दोष मण्ढ गया।

ऐसे जाने वालों के सम्बन्ध में पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा– ''मेरे जीवन में जब कभी तुम आये हो! मैंने तुम्हारा अपूर्व स्वागत किया है। तुम्हारे कुंकुंम अक्षत् के टीके लगाये। पुनर्मिलन के आँसू बहाए। बन्धुत्व के वादे किए। अपने सारे सुखों के बदले तुम्हें सुखी रखने की कोशिश की, लेकिन कभी अपने कष्टों का रोना तुम्हारे सामने नहीं रोया। मैं नहीं चाहता कि तुम मेरी मेजबानी की तारीफ करो, पर मैं तो केवल इतना ही परेशान हूँ कि तुम स्वेच्छा से आए और स्वेच्छा से गए, फिर आने और जाने के दोनों समय तुम अपनी मेहरबानी और मेरा कसूर क्यों बताते हो?''

पूज्यश्री तनसिंहजी ने अपने इस छोटे से जीवन में अनेक विरोध, अनेक आलोचनाओं और अनेक विश्वासघातों का सामना किया। पथ विचलित, धर्म भ्रष्ट व कर्तव्य विमुख लोगों को अपना कर्तव्य याद दिलाने, सद् पथ, स्वधर्म व कर्तव्य के कंटकाकीर्ण मार्ग पर ले चलने का प्रयास जब पूज्यश्री तनसिंहजी करने लगे तो लोगों का विरोध होने लगा और असहयोग बढने लगा। क्यों? क्योंकि यह कष्टपूर्ण मार्ग था जो उन्हें प्रिय कैसे लग सकता था? वो अधोगामी थे। अधोगामी होने में कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। गिरना तो आसान है, पर ऊपर उठना बड़ा मुश्किल व दूभर है, दुष्कर है। ऊर्ध्वगामी बनने के लिये कठिन साधना करनी पड़ती है, जो अति कष्ट साध्य है इसलिये विरोध तो होना ही था, असहयोग बढना ही था।

समाज की टूटती परम्पराओं को बचाना, जनमानस पर क्षीण होते जा रहे हमारे वर्चस्व को कायम रखना, अपने इस जर्जर होते समाज में जागृति का मंत्र फूंकना, समाज की बिखरी कड़ियों को पुन: जोड़कर एक करना, क्षत्रिय चरित्र से छिटकी युवाशक्ति को संस्कारों के साँचे में ढालकर नव निर्माण के मार्ग पर अग्रसर करना, हारे हुए अनेकों क्षत्रिय अर्जुनों के हाथों में गांडीव थमाकर कर्तव्य के पावन पथ पर उन्हें अग्रसर करना ही पूज्यश्री तनसिंहजी का मुख्य ध्येय था इसलिए वे सभी विरोधों और असहयोग को दरकिनार कर पूर्ण निष्ठा व तल्लीनता से अपना कार्य करने में लगे रहे।

पूज्यश्री तनसिंहजी जब पढने की उम्र के हो गये तो माँसा ने उन्हें विद्याध्ययन के लिये विद्यालय भेजना शुरू किया, तभी से उनका विरोध तो शुरू हो गया था। पूज्यश्री के बारे में लोग कहते थे-''ये क्या खाक पढेगा, इसमें तो माँग कर खाने की भी योग्यता नहीं है।'' लोग नहीं चाहते थे कि वे पढ-लिखकर योग्य बनें। वे इनका भला नहीं चाहते थे। वे तो इन्हें दरिद्र व गिरी अवस्था में ही देखना चाहते थे।

चौपासनी विद्यालय में पढते समय पूज्यश्री तनसिंहजी ने एक छात्र संगठन बनाया था। उनमें साधारण घरों के विद्यार्थियों का तो फिर भी सहयोग रहा, पर रईसजादों का तो विरोध ही सहन करना पड़ा। रईसजादों के लिये साधारण घरों के बालक सदैव अछूत ही रहे।

पूज्यश्री का बढता हुआ प्रभाव विरोधियों के आँख की किरकिरी बन रहा था। एक बार चौपासनी स्कूल के हार्डिंग हाऊस के ऊपर हॉल में एक कार्यक्रम हो रहा था जिसमें 50 के लगभग लोग थे। पूज्यश्री तनसिंहजी ने ज्यों ही खड़े होकर अपनी बात कहना शुरू किया, पूर्व योजना के अनुसार कुछ लोगों ने आकर पैसे बजा-बजा कर व्यवधान किया। जीवन भर अनेकों ऐसे तथा अन्य प्रकार के विरोधों से विरोधियों ने उनके कार्य में बाधाएँ खड़ी की व करते रहे और उखड़ते भी रहे, पर पूज्यश्री को वे इतना करने पर भी न तो हतोत्साहित कर पाये और न उन्हें अपने लक्ष्य से डिगा सके। पूज्यश्री अपने लक्ष्य पर अडिग रहकर पूर्ण निष्ठा से अपना कार्य करते रहे।

पूज्यश्री तनसिंहजी आगे पढने के लिये जब पिलानी गये तो वहाँ जाने के बाद समाज के और अधिक लोगों के सम्पर्क में आये और वहाँ समाज को व समाज के लोगों को नजदीक से देखने व समझने का उन्हें और अधिक अवसर मिला। समाज की गिरती दशा व उनकी तड़पन देखकर वे स्वयं व्यथित हो उठे और उन्होंने अपने समाज के लिये कुछ कर गुजरने की ठानी और एक संगठन खड़ा किया जिसके सम्बन्ध में जैसा पूज्यश्री ने बताया-

''राजाजी! तुम्हारे सदावृत को छोड़ने के बाद मैं एक सेठ के सदावृत पर पहुँचा। पहले तो मैंने सुना था कि वह सदावृत है, पर वहाँ पहुँचने पर मालूम हुआ कि वह सदावृत नहीं तिजारत है। दो साल रहने के बाद राजाजी! तुम्हारे और मेरे खानदान का भविष्य धुंधला दिखाई दिया। अत: प्रेरणा हुई और मैंने अपने भाई-बन्धुओं का संगठन करने की ठानी। दो साल तक वह संगठन चलता रहा। फार्म भरे जाते थे और सदस्य चार आने फीस के दिया करता था। हमने वह संगठन भी वास्तव में सामान्य व्यक्तियों का ही संगठन बना दिया था। दो साल बाद उस संगठन को नया रूप दिया गया और वह इस प्रान्त के खास-खास स्थानों में फैलने लगा। तब राजाजी! तुमने भी एक संगठन शुरू किया। वह संगठन राजाओं का था। मुझे

भी बुलाया गया। मैंने देखा, मेरे जैसे और भी सामान्य व्यक्ति वहाँ थे, किन्तु उनमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो अपने आपको साधारण समझता हो। सभी अपने आपको राजा समझते थे। उनके पास घोड़े थे, बन्दूकें थी। कवायद करते थे। मैं किंचित् आश्चर्य और ईर्षा से उन्हें देखा करता था। पर मुझे खेद हो रहा था कि उनका दिशा-निर्देशन ठीक नहीं था। मन ही मन सोच रहा था कि वह साधन मुझे मिल पाते तो मैं तुम्हारा कितना काम कर पाता, पर क्या करूँ, मुझ साधारण व्यक्ति की तुम तक पहुँच नहीं थी। जिनके मैं अपनी बात कहता था, वे तुम्हारे सामन्त होते थे-मेरी बातों को रोष से सुना करते थे और सन्देह से देखा करते थे। अन्ततोगत्वा मुझे एक दिन वहाँ से बहाना करके निकाल दिया गया। मैं चुपचाप चला आया, क्योंकि मैं एक साधारण सामान्य व्यक्ति था।''

रईसजादों की सोच थी कि एक साधारण व्यक्ति संगठन का अगुवा कैसे हो सकता है? जिस संगठन का अगुवा एक साधारण व्यक्ति हो, उनमें सम्मिलित होना वे (रईसजादे) अपनी तौहीन व बेइज्जती समझते थे। पूज्यश्री को श्री क्षत्रिय युवक संघ का प्रमुख देख, ऐसे लोगों के तन-बदन में आग लग जाती थी। इसलिये उनका सहयोग करना तो दूर रहा, सदैव वे विरोध में ही रहते थे। इस सम्बन्ध में पूज्यश्री तनसिंहजी ने कहा -

''भाई साहब! मैंने एक संगठन किया है और वह संगठन है हम साधारण लोगों का। इस बात को सोचे बिना कि वह संगठन तुम्हारे और तुम्हारे हित के लिये है, तुम केवल इस बात में उलझे हुए हो कि इसका अगुआ एक साधारण व्यक्ति है। तो भाई साहब! साधारण तो मुझे भगवान ने बना दिया, तुम्हारी बराबरी तो कैसे कर सकता हूँ? पर सच मानो, तुम भी अब साधारण के सिवाय कुछ नहीं हो। एक मनोवैज्ञानिक पृथकता के सिवाय और कोई भेद नहीं, पर मैं जानता हूँ, तुम्हारी नरभक्षी आदत के कारण तुम इस भेद को बनाये रखना चाहते हो, ताकि तुम अब भी अपने आपको बड़ा भाई कहकर अपना जी बहला सको।

''हम साधारण व्यक्तियों की आदत ईमानदारी से लड़ने की होती है, इसलिए तुम्हारे अवसान से पहले तुम्हें उस खतरे से अवगत कराना अपना कर्तव्य समझता हूँ, जो तुम्हारे घर में ही पैदा हो गया है। तुम्हारे पुत्र जिनको कल तक तुम कुँवर साहब कहा करते थे, वे अब जोरों से साधारण (सामान्य) बनते जा रहे हैं, एक आध साल में तुम्हारे घर में ही कुछ ऐसे ही पागल साधारण बनने वाले हैं जो इस संगठन की तुम पर निर्णायक विजय के आधार स्तम्भ कहलाएँगे।

''हम साधारण लोगों के जीवन का एक इतिहास है। वे सदा पराजित रहे, पर जब कभी भी विजयी हुए हैं, उन्होंने पराजितों पर सदा उदारता दिखाई है। इस समय मेरे दिल में भी तुमसे बदला लेने का कोई इरादा नहीं है, मुझे तो केवल एक ही भय है कि समय आने पर तुम्हीं हमारे किए कराये पर पानी न फेर दो। पर मैं जानता हूँ और इसीलिए निश्चिंत हूँ कि मैंने तुम्हारे घर में आक्रमण कर दिया है और एक दिन आएगा तब मुझे छुटभइया कहना भूल जावोगे और अपना मानोगे। समय तुम्हारी आँखें अवश्य खोलेगा और समय के कहने पर तुमने अपनी आँखें न खोली तो वह तुम्हारी आँखें फोड़ देगा। मैं जानता हूँ, तुम इस प्रकार के राजनैतिक सूरदास कभी नहीं बनना चाहते। परन्तु अब मैं भविष्य का भय बताकर तुम्हें किसी बात के लिये मजबूर नहीं करना चाहता।''

अनेकों लोगों ने उन्हें साम्यवादी बताया, तो अनेकों ने उन्हें बिड़ला का एजेन्ट बताया। किसी ने संघ को जागीरदारों के विरुद्ध किया गया प्रयास करार दिया, परन्तु हर प्रकार के विरोध में सहनशक्ति रखते हुए धैर्यपूर्वक अपने कार्य में निष्ठा व लग्न से लगे रहे। उनकी निष्ठा व लग्न को देख धीरे-धीरे लोग जुड़ने लगे।

पूज्यश्री तनसिंहजी चौपासनी स्कूल में पढते समय ही युवाओं में काफी प्रचलित तो हो चुके थे पर पिलानी में पढते समय उनका पत्र व्यवहार और सम्पर्क प्रबुद्ध राजपूत युवाओं से ज्यादा होने से राजस्थान के बुद्धिजीवी, पढे-लिखे राजपूत युवकों में वे अधिक प्रचलित हो चुके थे, और उनका प्रभाव दूर-दूर पूरे राजस्थान में फैल चुका था।

(शेष पृष्ठ 18 पर)

गतांक से आगे

मेरी साधना

लेखक-पू. आयुवानसिंहजी, गुजराती भाष्य-श्री बलवंतसिंह पांची, हिन्दी अनुवाद-प्रोफेसर रूपसिंह लिम्बड़ी

अवतरण-13

विश्व प्रेम का प्रदर्शन और मानवता के कल्याण की बातें मेरी दृष्टि में पाखण्ड और राजनैतिक छलमात्र हैं। मेरी पहुँच के बाहर, शून्य के उच्च धरातल पर स्थित उच्चादर्शों और गूढ सिद्धान्तों की गठरी से मैंने अपने मस्तिष्क को अनावश्यक रूप से बोझिल करना स्वीकार नहीं किया-इसलिए कि ऐसी भावना महान होने के कारण स्तुत्य तो है पर अव्यवहारिक और असम्भव होने के कारण त्याज्य भी।

पूर्व अवतरण में स्वधर्म की महत्ता एवं विशिष्टता का विवरण करने के पश्चात इस अवतरण में विश्व-धर्म के प्रदर्शन एवं मानवता के कल्याण की दुहाई देने वाली बातों को पाखण्ड और राजकीय छल बता रहे हैं। इस प्रकार की बातें करना बड़ा भारी दम्भ है। विश्व प्रेम, विश्वशान्ति की बातें व प्रचार करने वाले देश, सम्प्रदाय तथा सत्ता पर, शासन पर बैठे लोग जनता को, प्रजा को, आम आदमी को छलते हैं, ठगते हैं। उच्च आदर्श के शब्द जाल में लोगों को फसाते हैं। ऐसी बातें करने वाले राष्ट्र और उनके नेता समय आने पर, अवसर या मौका मिलने पर अन्य राष्ट्रों का आर्थिक शोषण करके लोगों को गुलाम, परतंत्र बना देते हैं। प्रेम और शान्ति के नाम पर लोगों को भ्रमित कर देते हैं। सेवा के नाम पर धर्मान्तरण करवा देते हैं। प्रेम, करुणा, दया इत्यादि शब्दों का जाल रचकर भावुक एवं भोले लोगों को छलने का धन्धा करते हैं। आजकल राजकीय तथा धर्म के क्षेत्र में ऐसे दंभी एवं आडम्बरी लोगों का धंधा बहुत चल रहा है। ऐसे छलिया छद्मवेश में आकर विश्व प्रेम-विश्वशान्ति-मानव कल्याण के महान् आदर्शों को अपने निजी तुच्छ स्वार्थ के लिये आदर्शों का अभिनय करके लोगों की दया, करुणा और धर्म भावना एवं राष्ट्र भावना का शोषण करते हैं। भावनात्मक शोषण का बहुत बड़ा कारोबार चल रहा है। ऐसे राजकीय नेता तो राजकीय क्षेत्र के कलंक हैं। साधु-संत के गणवेशधारी धर्म का अभिनय करने वाले तथाकथित साधु भी धर्मक्षेत्र के कलंक हैं। इसलिये साधक इसे पाखण्ड और राजकीय छल बताता है।

साधक कहता है ऐसे उच्च आदर्शों और सिद्धान्तों को व्यवहार में लाना अपने सामर्थ्य के बाहर है, जो आदर्श और सिद्धान्त व्यवहारिक नहीं है, ऐसे सिद्धान्तों और आदर्शों का बोझ अपने सिर पर उठाने का कोई मतलब नहीं है, ऐसा मानकर साधक के लिये ये अस्वीकार्य हैं।

उच्च आदर्श, सिद्धान्त और भावुकता की बातें प्रशंसनीय हैं, सुनने में बहुत अच्छी लगती हैं। सुनकर भाव विभोर हो उठते हैं, संवेदना झंकृत हो उठती है परन्तु ये बातें आचरण में, व्यवहार में नहीं लाई जा सकती हैं, तो फिर उसे छोड़ देना ही हितकर है। शेख-चिल्ली के दिवा स्वप्नों में मत रमा करो। जिस किसी क्षेत्र में कर्मरत हो वहाँ अपने सामर्थ्य, अपनी योग्यता और अपने कौशल से यथासंभव श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर कार्य करते रहो। आसमान के तारे धरती पर उतारने की असम्भव बातें करके लोगों की भावुकता के साथ खिलवाड़ मत करो। लोगों को अपने शब्दजाल में फंसाकर भ्रमित मत करो।

सार- एक 'टन' बातें करने की अपेक्षा एक 'औंस' काम करना श्रेयस्कर है। नाम बड़े और दर्शन खोटे से बचकर रहना चाहिए।

अवतरण-14

पर मुझे आवश्यकता है धर्म के व्यावहारिक स्वरूप की, उसके मूर्तिमान अस्तित्व की,-गोचर, व्यक्त, प्रकट और स्थूल की उपासना की। मैं समाज-सीमाओं में आबद्ध समाज-धर्म से आगे जा भी नहीं सकता। क्षितिज के उस पार, अवनी के कोलाहल से परे निस्तब्ध एकांत साधना मेरे गुण-स्वभाव के प्रतिकूल पड़ती थी। अतएव मैं परम्परा से परीक्षित, आत्मा से स्वीकृत और हृदय से समर्थित उस गोचर

तत्व का उपासक बन पड़ा जिससे भारतीय इतिहास की 'मधुमयी भूमिका' का जन्म, पोषण और रक्षण होता आया है।

इस अवतरण में पूर्व अवतरण के संदर्भ में क्षत्रियों के लिये क्षात्रधर्म के व्यवहारिक स्वरूप को समझाने का प्रयास किया गया है। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार प्रत्येक वर्ण के लिये, जाति के लिये अपने-अपने वर्णधर्म जाति धर्म को पालन करने का शास्त्रों का आदेश है। हम क्षत्रिय वर्ण-जाति में समाहित हैं। हमारी जाति की सीमा की कुछ मर्यादाएँ हैं, कुछ सामाजिक बंधन हैं। हम उन मर्यादाओं का, बंधन का उल्लंघन नहीं कर सकते। हमारे लिये हमारा अपना समाज-धर्म ही व्यवहारिक धर्म है।

हिमालय की कंदराओं में जाकर एकांत साधना करने की क्षत्रियों को आवश्यकता नहीं है। इतना ही नहीं, इस प्रकार की एकाकी साधना उसके स्वभाव के प्रतिकूल है। स्वभाव से प्रतिकूल साधना दुष्कर है और उसमें सफलता प्राप्त करना दुर्लभ है। विश्वामित्र की साधना इस बात का समर्थन करती है। राजर्षि से ब्रह्मर्षि होना कितना कष्ट साध्य है, इसका प्रमाण हमें विश्वामित्र के तप से मिलता है।

केवल परम्परागत ही नहीं अपितु जो शास्त्रों द्वारा प्रमाणित है, जिसको मन से, हृदय से, आत्मा से स्वीकार किया गया है और जिसके लिये हमारा हृदय समर्पित है वह क्षात्रधर्म ही क्षत्रिय के लिये व्यवहारिक धर्म है। एकान्त, नीरव स्थान में संसार के कोलाहल से दूर तप-साधना करने से जो फल प्राप्त होता है, वही फल क्षात्रधर्म में समाहित है।

क्षात्रधर्म के पालन से ही भारतीय इतिहास तथा संस्कृति की उत्पत्ति, पुष्टि, वृद्धि एवं सुरक्षा बनी रही है।

हमारे ऐतिहासिक तथ्यों के वर्णन की यहाँ कोई अनिवार्यता नहीं है फिर भी कुछ मूलभूत-सनातन सत्यों का उल्लेख करना उचित लगता है। जिसे भारतीय संस्कृति का नाम दिया गया है, जिस पर आज प्रत्येक भारतीय गौरव करता है, वह संस्कृति है क्या? वह और कुछ नहीं है केवल हमारी क्षत्रिय जाति के संस्कारों का व्यवहारिक रूप है। वेद हो या उपनिषद हो, महाभारत हो या रामायण हो, श्रीमद् भागवत हो या गीता हो, इनमें वर्णित कथाओं तथा आख्यानों की कथा वस्तु क्या है? पात्र कौन है?

हरिश्चन्द्र हो या भागीरथ, प्रहलाद हो या ध्रुव, राजा ययाति हो या जनक, शिवि हो या विश्वामित्र, रघु, दलीप, राम, लक्ष्मण, भरत, कार्तिकेय, कृष्ण, युधिष्ठिर, अर्जुन, फिर चन्द्रगुप्त, हर्ष, प्रताप, शिवाजी, दुर्गादास सभी हमारे ही पूर्वज हैं। हजारों-हजारों वर्षों से इन्हीं का रक्त हमारी धमनियों में बह रहा है। त्याग, सेवा, समर्पण, बलिदान, शौर्य और दान का हमारा इतिहास है।

ये वीर पात्र हमारे पूर्वज हैं, इस पर कुछ विचार करेंगे या नहीं? बस ये हमारे पूर्वज हैं और हम इनके वंशज हैं, क्या इतने में ही संतुष्ट होना है?

सार- सामाजिक, जातिगत पुनरोत्थान, उन्नति का आधार स्तम्भ है लोगों का त्याग और बलिदान।

अवतरण-15

व्यष्टि रूप से हित-साधन की कामना-डोर को विद्रोही बनकर मैंने तोड़ने का प्रयत्न किया। मैंने समष्टि में ही व्यष्टि का हित समाहित पाया। परमेष्टि मेरी दृष्टि में समष्टि का ही विराट रूप है। अतएव मेरी साधना का आधार वह समाजरूपी समष्टि बना जिसमें मैं जन्मा और परिपोषित हुआ, जिसके गौरव से मेरी देह और आत्मा का अणु-परमाणु पुलकित, गौरवान्वित और त्वरित हो उठा था-जिसको पाकर मैंने जीवन की सार्थकता ही प्राप्त कर ली थी।

व्यष्टि हित की बात, उपेक्षा परम इष्ट की।
समष्टि के सुख में, प्राप्ति परम इष्ट की।।

व्यक्तिगत स्वार्थ के त्याग के बिना अन्य का, समाज का हित या कल्याण नहीं हो सकता। स्वार्थ त्याग आसान नहीं है। बड़ा कठिन है। इसके लिये अपने आप से विद्रोह करना पड़ता है। जब व्यक्ति का यह विश्वास दृढ हो जाता है कि समष्टि के हित में व्यष्टि का हित समाहित है। व्यक्ति का कल्याण समाज के कल्याण में निहित है तब ही स्वार्थ त्याग का विचार आता है। समाज के हित के लिये विद्रोही बनने से ही व्यक्तिगत स्वार्थ छूटता है, तभी समाज में,

समष्टि में परम तत्व का दर्शन होता है। तब जाकर समाज की आराधना, उपासना, सेवा के द्वारा अगोचर इन्द्रियातीत परम तत्व को पाने का साधन समाज की आराधना बन जाता है। यह बात शीघ्र समझ में नहीं आती है परन्तु धीरे-धीरे उसका आचरण करने से सब समझ में आ जाता है।

हमें (साधक को) क्षत्रिय जाति में जन्म मिला है, उसका गौरव है। यह हमारे लिये धन्य भाग की बात है। यही हमारे जीवन की सार्थकता है कि यह क्षत्रियत्व का भाव जो हमारे अन्दर जरूर उमड़ेगा उसे व्यवहारिक रूप दें। परन्तु हम यह व्यवहारिक रूप देने में उदासीन हैं। जब तक भावना और विचार व्यवहार में परिणित नहीं होते हैं तब तक उसकी कोई सार्थकता नहीं होती है।

समाज को, समष्टि को परमेश्वर मानना और समाज के लिये हानिकारक आचरण करना, व्यवहार करना, कहाँ तक उचित है? हम आज अफीम, शराब इत्यादि मादक पदार्थों का सेवन करते हैं, सामाजिक कुप्रथाओं में फँसे हुए हैं, परस्पर कलह-क्लेश एवं ईर्ष्या तथा अहं से पीड़ित हैं और फिर भी जातीय गौरव लेने का दंभ भरते हैं।

'मेरी साधना' समाज के लिये हानिकारक हरकतों के त्याग के लिये हमें बल व प्रेरणा प्रदान करती है। इन अवतरणों को गंभीरता से समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

सार- जिस जाति में हमें जन्म मिला है, उसके गौरव के हम अनुकूल अधिकारी बनें।

अवतरण-16

जनता के संपूर्ण जीवन को स्पर्श करने वाले व्यापकत्त्व को लिये हुए; कर्म सौंदर्य की योजना के सभी सम्भव रूपों से नियोजित;-शक्ति और क्षमा, वैभव और विनय, पराक्रम और माधुर्य, तेज और कोमलता, सुखभोग और दुख-कातरता, प्रताप और कठिन-धर्म-पथ-आलम्बन आदि परस्पर विरोधी गुणों से युक्त,-अनेकत्व में एकत्व की सत्ता का प्रतीक,-क्षात्रधर्म मेरा समाज-धर्म, स्व-धर्म और स्वाभाविक कर्तव्य है।

इस अवतरण में साधक वर्तमान में पथ भ्रष्ट क्षत्रिय समाज को क्षात्रधर्म की व्यापकता, विशेषता और महत्त्व समझाने का प्रयास करता है। क्षात्रधर्म में स्वार्थ, संकुचितता, संकीर्णता को कोई स्थान नहीं है। क्षात्रधर्म में हमारे व्यक्तिगत हित, स्वार्थ को तो कोई स्थान ही नहीं है, अपितु समाज हित, वर्ग हित तथा राष्ट्र हित तक भी वह सीमित नहीं है और न केवल मानवता तक ही सीमित है, क्षात्रधर्म तो समग्र जीवों को स्पर्श करने वाला धर्म है। समस्त सृष्टि अर्थात् जड़-चेतन सबके हित की, कल्याण की रक्षा करना ही क्षात्रधर्म का कर्मक्षेत्र है।

क्षत्रिय के लिये क्षात्रधर्म का पालन करने के लिये परस्पर विरोधाभासी गुणों को धारण करने की क्षमता होना अनिवार्य है। जैसे बल-शक्ति के साथ क्षमा, समृद्धि-वैभव के साथ विनय, शौर्य-पराक्रम के साथ माधुर्य एवं तेजस्विता के साथ कोमलता-मृदुता जैसे परस्पर विरोधी-भाषित होने वाले गुणों को सहजता से स्वीकार करना क्षत्रिय के लिये परम आवश्यक है। अन्यों के लिये दुष्कर, असंभव प्रतीत होने वाला काम है लेकिन क्षत्रिय के लिये ये गुण उसके कर्म सौंदर्य को देदीप्यमान बनाने के लिये उपयोगी और आवश्यक हैं। कर्म सौंदर्य का मतलब है हमारा कार्य, हमारी प्रवृति लोकहित की, जनहित की होनी चाहिए। हमारा कार्य देखकर लोग उसका अनुसरण करें।

परन्तु आज हम अनुभव कर रहे हैं कि हम जो भी सामुदायिक कार्य करते हैं उसमें यथाशीघ्र पूरा करने की वृत्ति रहती है। हम जल्दबाजी से काम पूरा करने की उतावली में हैं। हमारे विचारों में स्थायित्व नहीं है। हम मीटिंग करते हैं, सभा-सम्मेलन भी करते हैं किन्तु उनमें दिखावटी-पन ज्यादा रहता है। एक प्रस्ताव रखा जाता है, करतल ध्वनि से उसका अनुमोदन होकर पारित कर दिया जाता है परन्तु फिर उसके अनुकूल अनुसरण नहीं होता। परिणाम यह आ रहा है कि हमारी प्रवृत्तियों का विकास नहीं हो पा रहा है। न हमारे विचारों की स्वीकृति का क्षेत्र विकसित हो रहा है।

कर्म सौंदर्य से हमारा इतिहास भरा पड़ा है। जो कर्म इतिहास के पृष्ठों पर गरिमापूर्ण स्थान प्राप्त करे, वही कर्म

सुन्दर है। गाय की जीवन रक्षा हेतु राजा दिलीप का अपनी देह को समर्पित करना; कपोत को जीवन दान देने के लिये अपने शरीर से काट-काटकर मांस देने का राजा शिवि का कर्म; अपने महल में आग लगने की सूचना पाकर भी स्वस्थता से सत्संग करने का राजा जनक का स्थितप्रज्ञ रहने का कर्म; अपने राष्ट्र की स्वतंत्रता के लिये, स्वधर्म के पालन के लिये जंगलों में दर-दर भटक कर भी अपनी आन का निर्वाह करने का महाराणा प्रताप का कर्म; छत्रपति शिवाजी, वीर दुर्गादास के साथ अनेकों अन्य वीरों के कर्म सौंदर्य हमें आज भी गौरव प्रदान करते हैं। उनकी परम्परा में उनकी जाति में हमें जन्म मिला है, उसका हम गर्व करते हैं। पू. तनसिंहजी ने स्वजाति उत्थान हित, स्वधर्म पालन हित अपना पूरा जीवन समर्पित करके युग की मांग पूर्ति हेतु श्री क्षत्रिय युवक संघ की स्थापना करके हमारे लिये कर्म-सौंदर्य का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

हमारी रक्तवाहिनियों में भी वही रक्त बह रहा है जो रक्त हमारे उन पुण्य पुरुष पूर्वजों की रक्तवाहिनियों में बहता था। हमारा कर्तव्य बनता है कि हम उनके मार्ग पर चलें।

सार– दुख और कठिनाइयों का इतिहास ही सुयश है। ***(क्रमशः)***

पृष्ठ 14 का शेष

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

पूज्यश्री तनसिंहजी व आयुवानसिंहजी राजस्थान के युवाओं में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुके थे। राजपूत युवाओं और बुद्धिजीवियों में उनकी अच्छी छवि बन चुकी थी। उन्हीं दिनों जोधपुर में मारवाड़ राजपूत सभा की कार्यकारिणी की एक महत्त्वपूर्ण बैठक हुई जिसमें सचिव पद का चयन होना था। युवा वर्ग आयुवानसिंहजी को सचिव बनाने के पक्ष में थे इसलिये युवाओं ने पूज्यश्री तनसिंहजी से बैठक में दो शब्द कहने व सचिव पद पर आयुवानसिंहजी का नाम प्रस्तावित करने का आग्रह किया। युवाओं के आग्रह पर पूज्यश्री तनसिंहजी जब माईक के पास गये तो एक भूतपूर्व जागीरदार ने उन्हें टोका, पर पूज्यश्री उनके टोकने के बावजूद भी माईक को हाथ में लेकर बोलने लगे तो उनसे माईक छीनने का प्रयास किया गया। इस पर बहुत से नवयुवकों ने ऐतराज जताया और बोले, हम तनसिंहजी को सुनना चाहते हैं, बार-बार यह बात दोहराई और कार्यकारिणी पर दबाव बनाया, तब कहीं जाकर पूज्यश्री तनसिंहजी को बोलने के लिये पांच मिनट का समय दिया गया। युवाओं के आग्रह पर वे पन्द्रह मिनट बोले और सचिव पद के लिये आयुवानसिंहजी के नाम का प्रस्ताव रखा। युवाओं ने अपनी खुशी के प्रकटीकरण में खूब तालियाँ बजाई और आयुवानसिंहजी के नाम का जोरदार ढंग से समर्थन किया। कार्यकारिणी में सन्नाटा छा गया। मारवाड़ राजपूत सभा की कार्यकारिणी में सभी जागीरदार लोग थे जो हतप्रभ रह गये। आखिर एक जागीरदार महोदय खड़े होकर बोले-तनसिंह ने जो क्षात्रधर्म सम्बन्धी बातें बताई वे तो ठीक हैं, पर सचिव के पद पर जो आयुवानसिंह का नाम आया है वो ठीक नहीं है, क्योंकि जिसके पास खुद की साइकिल भी न हो, बंगला भी नहीं है वो कैसे सचिव का कार्य कर सकता है? इस पर सभा में बैठे सैकड़ों युवाओं ने उक्त जागीरदार महोदय की बात का विरोध किया और आयुवानसिंहजी को सचिव बनाने के लिये कार्यकारिणी पर दबाव बनाया। जागीरदार लोग एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। आखिर काफी जद्दोजहद के बाद आयुवानसिंहजी को मारवाड़ राजपूत सभा का सचिव बनाया गया। राजस्थान की हर स्टेट में किसी न किसी नाम से राजपूत सभाएँ थी किन्तु उन पर अपने परम्परागत नेता राजाओं व उच्च वर्ग के जागीरदारों का अधिकार था। मारवाड़ में वह पहला अवसर था जब राजूपत सभा का पद किसी सामान्य राजपूत युवक को मिला था।

खूड़ ठाकुर साहब मंगलसिंहजी प्रारम्भ में पूज्यश्री तनसिंहजी के कार्य के विरोधी व आलोचक थे, पर वर्षों बाद में संघ कार्य को चलता देखकर उन्होंने कहा-

''ऐसा महापुरुष और योगी मैंने अपने जीवनकाल में दूसरा नहीं देखा।'' ***(क्रमशः)***

गतांक से आगे

कुण्डलिनी जागरण और आध्यात्मिक विकास

– स्वामी यतीश्वरानन्द

सर्प के साथ खिलवाड़ मत करो :

इस विषय में सभी साधकों को एक बात ध्यान रखना चाहिए। शारीरिक और मानसिक पवित्रता के बिना साधना करने वाले लोग आध्यात्मिक दृष्टि से अपनी शक्ति को व्यर्थ गँवा ही नहीं रहे, बल्कि अत्यधिक शक्ति संचय का खतरा भी मोल ले रहे हैं। क्योंकि वह शक्ति सांसारिक दिशा में प्रवाहित होकर काम-जीवन सहित उनके सांसारिक जीवन को प्रबलतर बना सकती है और इस तरह उनकी महान् हानि कर सकती है। श्रीरामकृष्ण द्वारा कथित उस किसान की कथा को याद करो, जिसने अपने खेत को सींचने तथा अपनी फसल तक पानी पहुँचाने के लिये कठोर परिश्रम किया, लेकिन उसे बाद में पता चला कि सारा जल चूहों द्वारा बनाए गए छिद्रों से बह गया है। तात्पर्य यह है कि संसारी व्यक्ति में सांसारिक इच्छाएँ उन छेदों के सदृश हैं, जिनसे शक्ति सांसारिक दिशा में बह जाती है।

स्विट्ज़रलैण्ड में रहते समय एक बार मैं एक प्रसिद्ध मनोविज्ञ से मिलने गया। उसके अनेक शिष्य थे, जिन्हें वह योग सिखाता था। मैंने उसकी पत्नी को ''कुण्डलिनी शक्ति'' का चित्र बनाते देखा और उससे पूछा, ''सर्प से खिलवाड़ करना क्या खतरनाक नहीं है?'' उसने हँसते हुए कहा, ''अरे नहीं, स्वामीजी, लोग इसे गम्भीरता से नहीं लेते।'' लेकिन कभी-कभी कुछ लोग इसे गम्भीरता से ग्रहण करते हैं और चित्तशुद्धि के बिना ही कुण्डलिनी के जागरण का प्रयत्न करते हैं। पर्याप्त पवित्रता के बिना एकाग्रता का अभ्यास खतरनाक है। एकाग्रता के द्वारा वर्धित शक्ति यदि आध्यात्मिक दिशा में प्रवाहित न हो सके, तो बहिर्मुखी व्यक्ति में वह किसी प्रबल वासना के रूप में बाहर प्रकाशित होकर उसकी और दूसरों की हानि कर सकती है। अन्तर्मुखी व्यक्ति में संचित शक्ति बाहर अभिव्यक्त न भी होवे। ऐसी स्थिति में वह उस व्यक्ति में एक भयानक मानसिक घूर्णिवात का निर्माण कर उसके स्नायुओं और मन को झकझोर कर उसे पूरी तरह भग्न कर सकती है।

कुछ लोगों में ध्यान द्वारा मन के आलोड़ित होने पर उसमें छुपी सभी शुभ और अशुभ बातें बड़े वेग से सतह पर आकर शारीरिक और मानसिक पतन कर सकती है। ''सर्प'' के साथ खिलवाड़ करने के इच्छुक अपवित्रात्मा सदा कष्ट पाते हैं। कुछ और दूसरे लोगों में संचित शक्ति दूरदर्शन, मन की बात जानना आदि क्षुद्र सिद्धियों के रूप में अभिव्यक्त होती है और ये शक्तियाँ उन लोगों को अहंकारी किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से दिवालिया बना देती है। कुछ अन्य लोगों में प्रसुप्त शक्ति का आंशिक जागरण होता है। आध्यात्मिक शक्ति एक उच्चतर केन्द्र तक उठती है, लेकिन पुनः नीचे गिरती है, जिसके भयानक परिणाम होते हैं और सांसारिक इच्छाएँ उत्तेजित हो जाती हैं। लेकिन जप, ध्यान और प्रार्थना के अभ्यास के साथ नैतिक अनुशासन का पालन करने वाले निष्ठावान साधक के लिये भय का किंचित मात्र भी कारण नहीं है। उसके लिये आध्यात्मिक जीवन पूरी तरह निरापद है।

आध्यात्मिक विकास एक सा नहीं होता :

एक कठिन समस्या का सामना प्रत्येक साधक को करना पड़ता है और वह यह है कि साधना बिरले ही एक समान होती है। आध्यात्मिक विकास सीधी लकीर में नहीं होता। एक उच्चतर केन्द्र में पहुँचकर साधक पाता है कि मार्ग बन्द है। वह उस केन्द्र पर अटक जाता है और उसकी शक्ति दूसरी दिशा में प्रवाहित होने लगती है। इसमें से पुनः मार्ग पाने में उसे लम्बा समय लग सकता है। कभी-कभी साधक बिना प्रगति किये एक ही स्थान पर बार-बार घूमता रहता है। महान् ईसाई योगी सन्त जॉन ऑफ द क्रॉस द्वारा ''आत्मा की अन्धकार रात्रि'' (DARK NIGHT OF THE SOUL) के रूप में वर्णित ये ''शुष्क'' काल सभी साधकों

के जीवन में प्राय: अपरिहार्य रूप से उपस्थित होते हैं। लेकिन नैतिक पथ का निष्ठापूर्वक अनुसरण करने से उनकी तीव्रता और काल को कम किया जा सकता है। मन की पवित्रता, कठोर नियमितता और भक्ति द्वारा एकरस आध्यात्मिक प्रगति सुनिश्चित हो जाती है।

कुण्डलिनी जागरण का वर्णन सरल और आसान प्रतीत होता है। लेकिन वास्तव में वह अत्यधिक कठिन है। जैसा कि गीता में कहा गया है, इसके लिये प्रयत्नशील सहस्र व्यक्तियों में सम्भवत: केवल एक का ही जागरण हो पाता है। लेकिन हताश होने की कोई आवश्यकता नहीं है। जिस तरह से लोग जीवन यापन करते हैं, उसे देखते हुए यह अच्छा ही है कि उनकी कुण्डलिनी बहुत धीरे जाग्रत होती है, या होती ही नहीं। अधिकांश लोग उसके जागरण के लिये बिल्कुल तैयार नहीं होते। वे उससे पैदा होने वाली महान् प्रतिक्रियाओं को सहन हीं कर सकते। वस्तुत: आध्यात्मिक जीवन में प्रारम्भ में कुण्डलिनी को भूलकर केवल भगवान का ही स्मरण करना चाहिए। अपनी समस्त शक्ति और मनोयोग अपने इष्ट के प्रति प्रेम में लगाओ। कुण्डलिनी की बात उन पर छोड़ दो। वे तुम्हारे आध्यात्मिक कल्याण की चिन्ता करेंगे। भगवान उचित समय पर तुम्हारा आध्यात्मिक जागरण करेंगे।

जैसा कि मैं बार-बार कह चुका हूँ-कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वय के मार्ग का अनुसरण करना श्रेयस्कर है। ध्यान के साथ-साथ निष्काम कर्म करते जाओ। इससे मन शुद्ध और बलवान होता है। आत्मनिरीक्षण करो और मन को शान्त और निर्लिप्त बनाओ। इसके बाद का काम जप से हो जाएगा। उचित पद्धति से किया गया जप आन्तरिक समरसता पैदा करता है, जो समरसता-सुषुम्ना को गतिशील करते हुए उससे प्रवाहित होती है।

कुण्डलिनी जागरण का सर्वश्रेष्ठ उपाय :

हमारा आध्यात्मिक पथ चाहे वह हिन्दू, बौद्ध, ईसाई अथवा सूफी किसी का भी क्यों न हो, हम सभी को जिन तीन अवस्थाओं से गुजरना पड़ता है, वे हैं- शुद्धिकरण, ध्यान और ईश्वर अथवा भगवत्-सत्ता की अनुभूति। यहाँ एक प्रश्न उठता है : ''आध्यात्मिक चेतना के जागरण के लिये ध्यान का प्रारम्भ कैसे करें?'' हममें से एक ने हमारे अध्यात्मगुरु स्वामी ब्रह्मानन्द से प्रश्न किया था, ''महाराज, कुण्डलिनी अथवा प्रसुप्त आध्यात्मिक चेतना का जागरण कैसे करते हैं?'' इसके उत्तर में स्वामी ब्रह्मानन्द ने कहा :

कोई-कोई कहते हैं, उसकी एक विशेष साधना है, जिसके द्वारा वह जागृत होती है। मेरा विश्वास है कि जप-ध्यान द्वारा ही जागृत होती है। कलियुग में जप-ध्यान ही श्रेष्ठ है। जप के समान सहज साधन और नहीं है। जप के साथ-साथ ध्यान करना चाहिए।

भगवान् की पिता, माता, ज्योतिस्वरूप आदि विभिन्न रूपों में धाारणा की जा सकती है। हृदय को अपनी चेतना का केन्द्र बनाकर परमात्मा का वहाँ पर किसी भी रूप में चिंतन करो जो तुम्हें रुचिकर लगे। भगवन्नाम अथवा शास्त्रांश का, उसके द्वारा प्रतिपादित ईश्वरीय रूप का चिंतन करते हुए आवृत्ति करो। यह एक सरल ध्यान पद्धति है, लेकिन बाद में वह उस ध्यान तक ले जाती है, जो जीवात्मा और परमात्मा का मिलन करने में सहायक होती है।

भगवन्नाम और भगवच्चिन्तन में महान् शक्ति है। भगवन्नाम का जप करते समय तथा परमात्मा का ध्यान करते समय ऐसा अनुभव करना चाहिए कि भगवन्नाम तथा चिंतन देह, मन, इन्द्रियों और अहंकार को पवित्र से पवित्रतर करते जा रहे हैं। तीव्रतापूर्वक ऐसा करने से श्वास-प्रश्वास संतुलित, प्राण समरस, मन शुद्ध और शान्त तथा अहंकार विराट्-केन्द्रित अथवा व्यापक हो जाता है। इसके फलस्वरूप क्रमश: आध्यात्मिक विकास होता है। ध्यान सह भगवन्नाम का जप एक दिव्य संगीत पैदा करता है, जो आध्यात्मिक मार्गों को साफ करता है, प्रसुप्त कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करता है तथा उसे उज्जीवित उच्चतर केन्द्रों से प्रवाहित करता है।

कुण्डलिनी आरोहण का क्रम :

उच्च से उच्चतर आरोहण करते हुए चेतना ऊर्ध्वाधर तथा समस्तर, दोनों ही दिशाओं में प्रगति करती है। जीवात्मा और परमात्मा एक-दूसरे के निकट आते जाते हैं। उपनिषद में इसी के प्रतीक के रूप में एक वृक्ष की ऊपरी तथा निचली शाखाओं पर रहने वाले, सुन्दर पंखों

वाले दो पक्षियों का रूपक प्रस्तुत किया गया है। नीचे वाला पक्षी ऊपर की ओर देखता है और अन्त में दोनों के एकत्व की अनुभूति करता है। योग की भाषा में नीचे वाला पक्षी मूलाधार में बैठा जीवात्मा है। ऊपर वाला पक्षी मस्तिष्क में स्थित सहस्रार पद्म में बैठा परमात्मा है। व्यष्टि चेतना या जीवात्मा की चेतना सुषुम्ना रूपी आध्यात्मिक मार्ग से प्रवाहित होती हुई उच्चतम बिन्दु तक पहुँचकर परमात्मा के साथ अपना एकत्व अनुभव करती है। यह जीवात्मा का उच्चतम आध्यात्मिक अवस्था और अनुभूति तक का आरोहण है। अधिकांश जीव इस अवस्था से पुन: दृश्य जगत में लौटकर वापस नहीं आते। लेकिन जैसा श्रीरामकृष्ण कहते हैं, कुछ ऋषि उस आध्यात्मिक उच्चावस्था से स्वेच्छापूर्वक लोककल्याण के लिये नीचे आते हैं।

आईए, अब हम देखें कि प्रत्येक चक्र या केन्द्र से सम्बन्धित अनुभूति के विषय में, इस विषय के सबसे महान् आधुनिक प्रमाण-पुरुष श्रीरामकृष्ण का, अपनी ही अनुभूतियों के आधार पर, क्या कथन है :

बड़ी साधना करने के बाद कहीं कुण्डलिनी-शक्ति जाग्रत होती है। नाड़ियाँ तीन हैं : इडा, पिंगला और सुषुम्ना। सुषुम्ना के भीतर छ: पद्म हैं। सबसे नीचे वाले पद्म को मूलाधार कहते हैं। उससे ऊपर हैं स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा। इन्हें षट्चक्र कहते हैं।

कुण्डलिनी-शक्ति जब जागती है, तब वह मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, इन सब पद्मों को क्रमश: पार करती हुई हृदय के अनाहत-पद्म में विश्राम करती है। जब लिंग, गुह्य और नाभि से मन हट जाता है, तब ज्योति के दर्शन होते हैं। साधक आश्चर्य चकित होकर ज्योति देखता है और कहता है, यह क्या, यह क्या?

छहों चक्रों का भेदन हो जाने पर कुण्डलिनी सहस्रार पद्म में पहुँच जाती हैं; तब समाधि होती है।

वेदों के मत से ये सब चक्र एक-एक भूमि है। इस तरह सात भूमियाँ हैं। हृदय चौथी भूमि है। हृदय वाले अनाहत पद्म के बारह दल हैं।

विशुद्ध चक्र पाँचवी भूमि है। जब मन यहाँ आता है, तब केवल ईश्वरी-प्रसंग कहने और सुनने के लिये प्राण व्याकुल रहते हैं। इस चक्र का स्थान कण्ठ है। वह पद्म सोलह दलों का है। जिसका मन इस चक्र पर आया है, उसके सामने अगर विषय की बातें-कामिनी और कांचन की बातें होती हैं, तो उसे बड़ा कष्ट होता है। उस तरह की बातें सुनकर वह वहाँ से उठ जाता है।

इसके बाद छठी भूमि है आज्ञा चक्र, यह दो दलों का है। कुण्डलिनी जब यहाँ पहुँचती है, तब ईश्वरी-रूप में दर्शन होते हैं। परन्तु फिर भी कुछ ओट रह जाती है, जैसे लालटेन के भीतर की बत्ती-जान तो पड़ता है कि हम बत्ती पकड़ सकते हैं, परन्तु शीशे के भीतर है-एक पर्दा है, इसलिए छुई नहीं जाती।

इससे आगे चलकर सातवीं भूमि है-सहस्रार पद्म। कुण्डलिनी के वहाँ जाने पर समाधि होती है। सहस्रार में सच्चिदानन्द शिव हैं, वे शक्ति के साथ मिलित हो जाते हैं। शिव और शक्ति का मेल।

सहस्रार में मन के आने पर निर्बीज-समाधि होती है। तब बाह्य-ज्ञान कुछ भी नहीं रह जाता। मुख में दूध डालने से दूध गिर जाता है। इस अवस्था में रहने पर इक्कीस दिन में मृत्यु हो जाती है। काले पानी में जाने पर जहाज फिर नहीं लौटता।

ईश्वरकोटि और अवतारी पुरुष ही इस अवस्था से उतर सकते हैं। वे भक्ति और भक्त लेकर रहते हैं, इसीलिए उतर सकते हैं। ईश्वर उनके भीतर विद्या का 'मैं', 'भक्त का मैं', केवल लोक शिक्षा के लिये रख देते हैं। उनकी अवस्था फिर ऐसी होती है कि छठी और सातवीं भूमि के भीतर ही वे चक्कर लगाया करते हैं।

ये पूर्ण ज्ञानी महापुरुष एक ही आत्मा को सब में प्रकाशित देखते हैं और सभी लोगों के प्रति प्रेम और करुणा से पूर्ण होते हैं।

ये महापुरुष ही अतिचेतन का सन्देश हम तक पहुँचाते हैं। उनका सारा जीवन लोगों के आध्यात्मिक मार्गदर्शन में व्यतीत होता है। सभी बुराईयों और स्वार्थ से शून्य, परमात्मा में नित्य मग्न, ये महापुरुष ही जगत् के कल्याण के लिये आदर्श जीवन यापन करते हैं। वे मानव की आध्यात्मिक नियति के, मानवात्मा के दिव्यीकरण के साक्षी और प्रमाणस्वरूप होते हैं। हमें उनके पदचिन्हों का अनुसरण करना चाहिए।

विचार-सरिता

(पञ्चाशत् लहरी)

- विचारक

आत्मानुभूति वह बोध है जिसमें जैसे अंधेरे में कोई प्रकाश किरण उतर आए। जैसे अँधे व्यक्ति को आँखें मिल जाए। लगता है जैसे आज तक जो नहीं सुना वह सुनाई पड़ा और हृदय एक नई उमंग से भर गया। क्योंकि साधक में उपयुक्त पात्रता होती है तब ऐसा होता है।

पहाड़ों पर वर्षा होती है पर पहाड़ सूखे रह जाते हैं। क्योंकि वे पहले से भरे हुए हैं जहाँ खालीपन होता है जैसे सरोवर में खालीपन होता है अत: पहाड़ से बहकर वही पानी ढलान में स्थित सरोवर में भर जाता है। वहाँ जल को पाने की पात्रता है अत: वहाँ वह जलराशि टिक पाती है। ऐसे ही जिस साधक में पहले से नीरवता है, खालीपन है तो उसमें ज्ञान की बूंदें ठहर सकती हैं। जिसका हृदय रूपी सरोवर यदि सांसारिक मोहमाया से भरा हुआ है तो ज्ञान रूपी बूंदें वहाँ भी व्यर्थ ही जाएगी क्योंकि वहाँ उन अमृत बूंदों को इकट्ठा करने का भाव ही नहीं है। ज्ञानरूपी अमृत बूंदों को धारण करने के लिये खाली होने की जरूरत है। जो खाली है वही सुपात्र है।

अहंकार आदमी को पत्थर जैसा बना देता है। निर-अंहकार आदमी को शून्यता देता है। ऐसी स्थिति में सुनते ही जाग्रति आ जाती है। हवा का झकोरा जगाने के लिये काफी होता है। कोड़ा मारने की जरूरत ही नहीं पड़ी। कोड़े की फटकार ही काफी थी कि घोड़ा दौड़ पड़ा। ऐसे शिष्य तो बहुत दुर्लभ ही मिलते हैं कि गुरु ने कुछ कहना प्रारम्भ ही किया था कि वे भावविभोर होकर अपने आप में जग गए। ऐसे गुरु भी सद्भागी होते हैं कि जिनको जनक जैसे शिष्य मिल जाय। क्योंकि जनकजी को तो अष्टावक्र का इशारा मात्र हुआ था और वे जग गए। जिस साधक की नींद गहरी न हो और जिसके चित्त में कोई स्वप्न का संकल्प भी न हो ऐसे साधक को तो बस मात्र जरा सी टेर सुनाने की जरूरत होती है। अध्यात्म जगत के इतिहास में बहुत कम शिष्य ऐसे हैं जो लगता है जैसे जगने को ही थे और जरा-सी धीमी आवाज ने ही पूर्ण जाग्रति ला दी। राजा जनक, भगवान बुद्ध, महावीर, सुकुरात, ईसा मसीह, लाओत्से, कबीर और नानक जैसे गिनती के लोग हुए जो इशारा पाते ही जग गए। उनके जीवन में रात्रि जा चुकी थी और सुबह होने को थी कि किसी पक्षी ने गीत गाकर पूर्ण जाग्रति ला दी।

लाओत्से ऐसा ही जगने की स्थिति वाला शिष्य था कि वह जिस पेड़ के नीचे बैठा था, उसी पेड़ का एक सूखा पत्ता टूटकर उसके समक्ष गिरा और वह होश में आ गया। उस सूखे पत्ते ने उसके जीवन का रहस्य बता दिया। बुद्ध को एक मुर्दे ने जगा दिया। क्योंकि बुद्ध सुपात्र थे। आप और हमने भी कई मुर्दों के जनाजे देखे। कई बार मुर्दों को कंधा देकर श्मशान घाट तक पहुँचाया पर स्वयं के बारे में विचार ही नहीं किया कि जीवन की यही परिणिति है। जीवन का अन्तिम परिणाम तो मृत्यु है। हमने सदैव मृत्यु को दूसरों के सिर मंडराते देखा। कभी-कभार यदि अपने सिर पर मंडराते मौत के साये को ठीक से देख लेते तो जीवन में क्रान्ति घटित हो जाती। जिन महापुरुषों को बोधत्व प्राप्त हुआ उन्होंने उस घटना को अपने लिये देखा और वह दिखाई दिया, जो आज तक नहीं देखा व सुना था। साधक की सम्यक दृष्टि ही वह देख पाती है जो वास्तविक है, यथार्थ है।

दुनिया में बहुतायत में ऐसे लोगों की भीड़ है जो जगाने पर भी नहीं जगना चाहते। सुनाने पर भी सुनने को राजी नहीं। ऐसे लोगों को जगाने पर वे नाराजगी प्रगट करते हैं। सुनाने पर वह नहीं सुनते जो सुनाया जा रहा है। वे तो वही सुनते हैं जो उनको सुनना है। एक नौकर था जो सेठ के यहाँ पिछले दो माह से नौकरी कर रहा था। सेठ उसके काम से असन्तुष्ट था। एक दिन नौकर को अपने पास बुलाया और कहा कि-''रामनारायण मैं तुम्हारे कार्य से संतुष्ट नहीं हूँ इसलिए मजबूरी में मुझे दूसरा नौकर रखना

होगा।'' रामनारायण ने पूरी बात सुनने के बाद भी यही सुना कि–''हाँ मालिक! आपका कहना बिल्कुल सही है। यह कार्य वास्तव में है ही दो आदमियों का। इसलिए आप अवश्य एक आदमी और रख लीजिये, ताकि मुझे और सहुलियत हो जाएगी।'' आदमी हमेशा वही सुनता है जो उसे सुनना है। इसलिए अहंकारी साधक के लिये कितना ही चीखो–चिल्लाओ वह सुनते हुए भी नहीं जगेगा परन्तु जो निरहंकारी उत्तम साधक है उसे तो जगने का बहाना चाहिए। हवा का झौंका भी उसे जगाने के लिये काफी है। किसी पक्षी का गीत भी उसमें जाग्रति ला सकता है।

आँख तो खुल जाती है पर आदमी की जब तक नींद नहीं टूटती वह जगा हुआ नहीं कहा जा सकता। जगे हुए लोगों का कहना है कि हम बेहोशी का जीवन जी रहे हैं। होश ही नहीं है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। आदमी अर्थ संचय की अंधी दौड़ में भागा जा रहा है। उसको पता ही नहीं है कि वह इतना सारा द्रव्य क्यों इकट्ठा कर रहा है। सपने में जीवन जीया जा रहा है। सो अरब इकट्ठा करने का सपना था किसी धनवान का। जब वह मरने लगा तब उसके निजी सचिव ने धन का ब्योरा देते हुए कहा कि आप दुनिया के दस अमीरों में दूसरे पायदान पर हो, क्योंकि आपके पास दस अरब की पूंजी आज भी है। उस अमीर आदमी ने सोचा मेरे जैसा कंगला भी कोई नहीं। अभी नीब्बे अरब का घाटा चल रहा है और मैं इस घाटे को बिना पूरा किये ही जा रहा हूँ। आदमी को पता ही नहीं कि जीवन किसलिये मिला है और जीवनशैली किसे कहते हैं। बेहोशी का जीवन जीने वाला व्यक्ति प्रकृति को ही अपना स्वरूप मानता है और प्रकृति का दृश्य बनकर जीने में ही जीवन की सार्थकता मानता है। असल में है तो वह प्रकृति का द्रष्टा परन्तु द्रष्टा होते हुए भी दृश्य की लालसा गई नहीं, इसलिए वह प्रकृति के पदार्थो के संचय में लगा हुआ है कि मैं इतनी भौतिक सम्पदा इकट्ठी कर लूँ कि बस दुनिया में सब की नजरें मेरे पर टिक जाए। मेरे नाम की कीर्ति का डंका सबसे ऊँची आवाज में बजे। इस तरह वह दृश्य बनकर रह जाता है। द्रष्टा तो क्या वह कभी दर्शक बनने की भी इच्छा नहीं करता और अपनी जीवन लीला में शान्त स्वरूप होते हुए भी अशान्त होकर मर जाता है।

प्रत्येक साधक के जीवन में जाग्रति का अवसर अवश्य आता है। कोई न कोई जगा हुआ महापुरुष उसे आवाज अवश्य देता है, पर हम आँख खोलकर करवट बदलकर पुनः सो जाते हैं। ऐसे निर्भागी मानव जीवन पर्यन्त नींद में ही रहते हैं और स्वप्नवत जिन्दगी जी रहे होते हैं। सपने में दिखाई देने वाली स्त्री, पुरुष, परिवार, दुकान, मकान बस सपने तक ही काम के हैं आँख खुलने पर उनका कोई अस्तित्व नहीं, ऐसे ही अज्ञानी जीव खुली आँख के सपने को सत्य मानकर अपनी प्रारब्ध रूपी पूंजी भी यहाँ हार कर चल देता है। जीवन जीने की वास्तविकता से रूबरू तो किसी जगे हुए महाजन की शरण में जाने से ही हो सकते हो। अतः जब तक प्रारब्ध शेष है, देह में प्राणों की पूंजी समाप्त न हो जाए उससे पहले–पहले होश में आ जाएँ, चेत में आ जाएँ। मोह की निद्रा को तोड़कर पूर्ण जाग्रति में आ जाएँ। बस इसी में जीवन की सार्थकता है। इसी में साधक की भलाई है।

ओम् शान्ति! ओम् शान्ति!! ओम् शान्ति!!!

सतर्क और जागरूक मस्तिष्क वाला व्यक्ति अपने उद्देश्य को प्राप्त करने में सफल होता है और यदि वह सदैव समस्त परिस्थितियों में जागरूक और जीवंत है और चरित्र के दोषों में परिष्कार करता है तो दुनिया की कोई परिस्थिति अथवा शत्रु उसे परास्त नहीं कर सकते और दुनिया की कोई शक्ति उसके लक्ष्य की उपलब्धि में बाधा नहीं डाल सकती।

– जेम्स ऐलन

महारावल सिद्धश्री देवराज जी

– रतनसिंह बडोड़ागाँव

कुँवर देवराज जी के पिताश्री जुगराज विजयराव जी 'चूड़ाला' और पितामह राव तणुराव जी के एक ही वर्ष में वीरगति को प्राप्त होने व शत्रु के प्रबल होने से भाटियों ने अपने सभी छह किले खो दिए और उधर कुँवर देवराज जी को राईका भटिण्डा से सुरक्षित निकालने के बाद देवायत जी पुरोहित के यहाँ सुपुर्द कर तणोट चला गया था।

पीछा कर रहे वाराह जब पुरोहित जी के खेत में पहुँचे तो एक पागी (खोजी) ने ऊँटनी के निशानों के आधार पर कहा कि, यहाँ से ऊँटनी इकलास (पूर्व में सवार थे, यहाँ से केवल एक सवार ही ऊँटनी पर आगे गया) हुई है। पुरोहित जी से पूछताछ की तो उन्होंने अनभिज्ञता जाहिर की। खोजी दल ने पुरोहित जी के घर की तलाशी ली व गहन पूछताछ में पुरोहित जी ने पाँच पुत्र होने की बात कही। शंका दूर करने हेतु वराहों ने उन्हें साथ- साथ भोजन करने को कहा। दो-दो ने साथ भोजन किया। पाँच पुत्रों सहित पुरोहित जी ने भोजन कर वराहों को संतुष्ट किया, वे चले गए। संयोग से कुँवर देवराज जी के साथ पुरोहित जी का सबसे बड़ा पुत्र रतनु बैठा था। जब बिरादरी में रतनु द्वारा कुँवर के साथ भोजन करने की बात ज्ञात हुई तो उन्होंने रतनु को जाति च्युत कर दिया। रतनु सोरठ चला गया और सिंहथली नामक गाँव में रहने लगा। कुँवर देवराज जी जब शासक बने तो उन्होंने रतनु को बुलाकर सम्मानित किया तथा देथा चारण की पुत्री से विवाह करवाकर 'पोलपात' बनाया। तब से रतनु चारण भाटियों के पोलपात पाटवी बने।

सौदां ने सिसोदिया, रोहड़ नै राठौड़।
दुरसावत नै देवड़ा, जादम रतनू जोड़।।

एक वर्ष पश्चात् पुरोहित देवायत जी कुँवर को सुरक्षित उनकी माताजी के पास जांघे पहुँचा आए। जहाँ वे दस वर्ष तक गुप्त रूप से रहते हुए घुड़सवारी और युद्धाभ्यास करते रहे। बाद में पुरोहित जी भटिण्डा गये और कुँवर जी की सास से मिले। चूंकि युवरानी हुरड़ अब युवा हो गई थी व उसकी माता जी रानी रवा उसके भविष्य के बारे में चिंतित रहती थी। पुरोहित जी ने उन्हें कुँवर जी की कुशलता के समाचर सुनाए तो रानी ने कुँवर जी को ससुराल लाने का निवेदन किया। चतुर पुरोहित जी ने उन पर विश्वास नहीं किया। रावल योगी रतननाथ जी सिद्ध की मार्फत वाराहों से वचन लेने के बाद वे कुँवर देवराज जी को ससुराल ले आए। योगीराज कश्मीर चले गये। उनकी मेड़ी में जहाँ कुँवर जी सोते थे योगीराज अपनी झर-झर कंथा, रसकूम्पा आदि दिव्य वस्तुएँ झोली में डालकर छोड़ गए थे। पाँच माह बाद कुँवर जी ने अपनी युवरानी हुरड़ कँवर को साथ लेकर जांघे लौटने का निश्चय किया। उन्होंने योगीराज जी की दिव्य वस्तुएँ सुरक्षित निकाल कर मेड़ी में आग लगा दी और जांघे चले गए।

माता नवरंगदे ने कहा-''बेटा, तुम भाटी वंश की धरोहर हो। तुम्हारे कन्धों पर मेघाडम्बर छत्र और भगवान आदिनारायण की रक्षा का भार है। तुम्हारे शत्रु खुशियाँ मना रहे हैं। अब तुम्हें हमारी खोई हुई प्रतिष्ठा पाने हेतु प्रयत्न करने होंगे।'' देवराज जी ने प्रत्युत्तर दिया-''धीरज रखो माँ। मैं पिताश्री के कायर हत्यारों को उन्हीं की धरती पर समाप्त कर दूंगा तथा आपके वचनों को पूरा करने में अपना संपूर्ण जीवन लगा दूंगा।''

देवराज जी वीर, दृढ़ निश्चयी और होनहार युवा होने के साथ-साथ कुलदेवी के परम भक्त थे। अपनी माता जी को दिए वचन के अनुसार वे अपने कुलनाशी शत्रुओं से वैर लेना चाहते थे। साथ ही भाटी राज्य को पुन: कायम करने हेतु भी शक्ति संचय आवश्यक जान उन्होंने मातेश्वरी को प्रसन्न करने का दृढ़ निश्चय कर कठोर साधना की। मातेश्वरी ने प्रसन्न हो उन्हें राज तेज बढ़ने का वरदान दिया।

सिध आप भेंटियो, प्रसिध ते नव निध पाई।
सेवी आदि सकत विरद, घण तेज बंधाई।।

मातेश्वरी ने उन्हें एक खड़ग प्रदान किया जिससे उन्होंने बावन प्रवाड़े जीते।

तणुराव ने तख्त दीन्हो, बिजैराव ने चूड़।
देवराज ने खड़ग दीनी, दुश्मन कर दूर।।

बाद में भी हर पीढ़ी ने फतेह की। महारावल घड़सी जी ने भी इसी खड़ग के प्रताप से दिल्ली के बादशाह को प्रसन्न किया था। यह खड़ग 'घड़सीजी का खांडा' नाम से वर्तमान में मौजूद है। इसे मेघाडम्बर छत्र की तरह पवित्र व शुभ माना जाता है और दशहरे के दिन इसका पूजन किया जाता है।

देवराज जी ने जांघे से सिंध की ओर 130 किलोमीटर और माड प्रदेश जैसलमेर से 250 किलो मीटर दूर पूगल क्षेत्र (वर्तमान में बहावलपुर, पाकिस्तान) में राव जूझेराव भुट्टे की अनुमति से देवराजपुर किले की नींव डाली जो बाद में देरावल गढ़ कहलाया। भुट्टों के मना करने पर देवराज जी की माता जी ने जाकर कहा –

राव जुझा सुण वीणती, बोल न पीछा लेह।
का भुट्टे का भाटिये, कोट अड़ावण देह।।

– जैसलमेर री ख्यात

सुण जजा इक विनती वैण न पछा लेह।
का भुटां का भाटीयों कोट अडावण देह।।

मजबूत व ऊँची प्राचीरों तथा बावन बुर्जो वाला यह किला सन् 852 ई. में बनकर तैयार हुआ जो वर्तमान में मौजूद है। मुंहणोत नैणसी ने देरावर दुर्ग की प्रशंसा में लिखा है कि, सारा रै ऊपर माड रो गढ़ हुवो। देरावर नागजो (नहीं टूटने वाला) कोट छै। निपट वडो अगजीत कोट।

भुट्टों को आशंका होने पर वे फौज ले आए। देवराज जी ने उन्हें आश्वस्त करने का प्रयास किया कि, वे उनके क्षेत्र में दखल नहीं देंगे, वे व्यर्थ में ना घबराएँ। भुट्टों ने नामी सरदारों द्वारा वचन देने का प्रस्ताव रखा। इस बहाने देवराज जी ने 120 भाटी सरदारों को बुलाकर किले में रख लिया। योगीराज रतन नाथ जी के वहाँ पधारने पर देवराज जी ने उनका बहुत ही श्रद्धापूर्वक सत्कार तथा सम्मान किया। योगीराज जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और देवराज जी को आशीर्वाद दिया। योगीराज जी ने उन्हें महारावल का खिताब और सिद्ध देवराज नाम प्रदान किया। योगीराज रतन नाथ जी के आशीर्वाद व आज्ञानुसार सोमवार, माघ सुदी (बसंत) पंचमी विक्रम संवत् 909 (सन् 852) को पुष्य नक्षत्र में किले की प्रतिष्ठा की गई। देवराज जी ने योगीराज की आज्ञानुसार योगी का वेश धारण किया और राजसिंहासन पर विराजमान हुए।

सिद्ध वचन वर पाय, सिद्ध भए देवराज।
रतन नाथ हथ तिलक किय, कह्यो भूपति सिरताज।।
सिध आप भेटियो प्रसिद्ध ते नव निधपाई।
सेवी आदि शकत विरद घण तेग बंधाई।
नवसै समे नवौतरे पुख्य नक्षत्र पेखीजै।
माघ सुदी पंचमी वार पण सोम भणीजे।
देवायत प्रोहित ते लग्न दीय कोट नींव अवचल करूं।
देवराज करायो देवगढ़ जुगां च्यार रहसी जरूर।।

तब से लगातार राज्याभिषेक के समय महारावल योगी का वेश, खड़ाऊ आदि पहनते हैं, तत्पश्चात् आयस के मठ को दे देते हैं। दान पुण्य करने के पश्चात राजसी पोशाक धारण करते हैं। श्री लक्ष्मीनाथ जी व स्वांगीया जी के दर्शन करने के पश्चात् आम दरबार में विराजमान होते हैं। प्रमुख भाटी प्रधान खून से तिलक करते हैं। बाद में कुमकुम तिलक पाट पुरोहित करते हैं। तोपों की सलामी व भेर घाव तथा नजर न्यौछावर होते हैं।

महारावल देवराज जी ने रतनु चारण को केलाकोट (कच्छ) भेजकर लाखा जाड़ेचा से सैनिक सहायता मंगवाई। दस हजार सैनिक व पच्चीस तोपें लेकर रतनु लौट आया। भुट्टे चूंकि गढ़ की नींव देने के समय से ही नाराज व आशंकित थे, महारावल की बढ़ती सामरिक गतिविधियों ने उनकी आशंकाओं को सच कर दिया। भुट्टों ने देरावल गढ़ पर आक्रमण कर दिया। महारावल देवराज जी एक महान योद्धा थे, उन्होंने भुट्टों को मुँह तोड़ जवाब दिया। राव जूझेराव अपने सरदारों सहित मारे गए व अन्य जान बचाकर भाग छूटे। महारावल जी ने भटिण्डा पर हमला कर वाराहों को मार अपने पिताश्री का वैर लिया।

जीवत वाही जातड़ी, जीवत नर पहचाण।
सौ बरसां नह बीसरै, बैर चुकावण बाण।।

झालों व पंवारों को परास्त किया। धार अभियान के दौरान देरावर गढ़ 'दहिया' भाणेज को सुपुर्द कर गए थे। महारावल जी की अनुपस्थिति में उनके इस भाणेज ने गढ़ पर अधिकार करने का मन बना लिया परन्तु महारावल के लौटते ही भयभीत हो दरवाजा खोल दिया। महारावल ने विचार किया कि, यह वीर भूमि नहीं है अत: लौद्रवा पर अधिकार करना चाहिए।

लौद्रवा पर राजा जसभांण पंवार राज्य करते थे। महारावल देवराज जी ने लुद्रवा के प्रधान पुरोहित विमला को अपनी ओर फांसकर विवाह प्रस्ताव भिजवा दिया। लग्न तय होने पर महारावल बारात के बहाने बारह सौ चुने हुए योद्धाओं के साथ लुद्रवा पहुँचे। बाराती बने योद्धा सौ-सौ के दल बनाकर विभिन्न प्रवेश द्वारों से एक साथ अन्दर प्रवेश कर गए। इस प्रकार देवराज जी ने लुद्रवा पर अधिकार कर विवाह सम्पन्न किया तथा लुद्रवा में अपनी नई राजधानी कायम की। तत्पश्चात देवराज जी का प्रताप बढ़ता गया, उन्होंने भाटी राज्य का विस्तार किया। पंवारों से नव कोट लिए तब से 'नवगढ़ नरेश' कहलाते हैं। जालोर सोनगरों को दी, देरावर भाणेज दहिया को दी, मंडोवर पड़ियारों को दी। अन्य कोट खालसे रखे। ख्यातों में जालोर, देरावर, मण्डोवर, लोद्रवा, पूगल, सातलमेर, किरहोर, भटनेर, बींझणोट, मूमण्वाहन, मरोठ, किराड़ु, थरपारकर, रोहड़ी, भक्खर आदि प्रदेशों पर उनके अधिकारों की पुष्टि होती है। उनकी सेना में पाँच लाख पैदल सेना और सवा लाख घुड़सवारों का उल्लेख अतिश्योक्ति पूर्ण हो सकता है, पर वे एक महान शक्तिशाली सम्राट थे, जिनकी आन दुहाई पूरे मारवाड़ में ही नहीं बल्कि संपूर्ण पश्चिमी राजपूताने के विस्तृत क्षेत्र में फिरती (प्रचलित) थी। वे महान कूटनीतिज्ञ और कुशल प्रशासक होने के साथ-साथ लोक कल्याणकारी सम्राट थे। उन्होंने तणुसर, बिजड़ासर, देरासर व लछीसर आदि तालाब खुदवाए। उन्होंने गढ़ व कुएँ बनवाए तथा गाँव बसाए। दानवीर महारावलजी ने जरूरतमंदों को मुक्त हस्त से दान कर खजाने लुटाए।

छपया

देवराज थपे दुरंग लुद्रवां आप घर लाए।
संमवाहण त्रय सिंध जूनो पारकर जमाए।
आबू फेरी आंण भड़ जालोर हु भंजे।
मारे नृप मंडोर गढ़ अजमेर हु गंजे।
पूगल गढ़ लियो प्रगट कतल विठंडे कीजिए।
देवराज भूप चढ़ते दिवस रतन आज्ञा धर लीजिए।।

दोहा

नव सै समे पच्यासीये मृगसर सुदी दसम,
एता दिन सुख भोगवे सृग पोहते जादम।।
विजेराव पाट वसेख्तां देवराज भूपाल,
पचास वरस पंच आगलो कियो राज रखपाल।।

पृष्ठ 7 का शेष

चलता रहे मेरा संघ

वह प्राप्ति वे हमें देकर गये हैं, हमको खोजना है उनके साहित्य में कि कहाँ हीरे हैं, कहाँ मोती हैं, कहाँ लाल हैं। वे सब उनके साहित्य में मिलेंगे जिनसे प्रेरित होकर पूरे समाज को जोड़ें।

'राजपूत और भविष्य' पुस्तक वर्तमान राजनीति में सफल होने का अचूक प्रयास प्रस्तुत करती है। सभी लोगों को साथ लिए बिना कोई भी जाति आज आगे नहीं बढ सकती। राजपूत तो सदैव से ही सबको साथ लेकर चला है। आज भी हमारे लोग जो राजनीति में हैं वे यदि यह बात करते हैं कि जो दूर हो गए उनको हम साथ लें तो बात ठीक है, पर यदि वे मेहनत करके आगे बढते हैं और हमारे साथ आते हैं तो उनको उचित दर्जा न दिया जाना दोषपूर्ण होगा। वे मेहनत करके आगे आए हैं तो उनके पास भी शक्ति होनी चाहिए ताकि वे भी अपने अभाव दूर कर सकें। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग यह पुस्तक पढेंगे और लाभ उठायेंगे।

पू. आयुवानसिंहजी के जीवन सम्बन्धी सारी बातें आपको पहले बताई जा चुकी है, मैं तो यही कहना चाहता हूँ कि उनकी स्मृति हमारे स्मृति पटल से दूर न रहे। उन्हें याद करते हुए यह शताब्दी वर्ष बहुत अच्छी तरह मना सकेंगे जो एक मील का पत्थर बन सकता है। हम सभी उसके लिये प्रयत्नशील रहें। ***जय संघशक्ति!***

वीर शहीद राजेन्द्रसिंह मोहनगढ़ को काव्यांजलि :

अमर शहीद इकतीसी

– मदनसिंह सोलंकियातला

पग पग पळकै देवळै, पग पग पळकै पाट।
पग पग सतियां सूरमा, मुरधर री इण माट।।

समरांगण रा सूरमा, थिर रुखवाळा थार।
जदुवंशी जैसांण रा, हरवळ रा हकदार।।

वंदन! अभिनंदन करूं, मंडन जस महावीर।
खंडन खळदळ रौ कियौ, गहर राज गंभीर।।

हाथ पताका हिंद री, ऊंची राख उतंग।
रगत हिमाळै रासियौ, उर में देस उमंग।।

संघ शिविर कर साधना, संघ रौ धार संदेस।
वतन रुखाळण वाहरू, दिप दिप दीपै देस।।

वरण संघ में वीरता, धरण फौज रण धीर।
मरण देस हित मरद रौ, करण नाम कुळ वीर।।

जादम कुळ जैसांण में, अइयौ भड़ अवतंश।
सती जती और सूरमा, वाह! रे भाटी वंश।।

लड़ियौ जद लंकाळ वौ, भिड़ियौ कर भाराथ।
अड़ियौ जस अंकास में, पड़ियौ नह वो प्राथ।।

कटियौ जादम केहरी, डटियौ रण में आय।
हटियौ नी हिम डूंगरां, मिटियौ माटी मांय।।

सतधारी भल सूरमौ, पतधारी प्रिथपाळ।
जसधारी जद जूंझियौ, पणधारी दिगपाळ।।

कीरत खाटी कौम री, गौरव थाटी गोद।
पण भाटी जद पोढियौ, माटी किनौ मोद।।

सांवळसुत सुरलोक में, हिंद तिरंगो हाथ।
राजल रजवट देस रौ, भल लड़ियौ भाराथ।।

अचल डूंगरां रह अडिग, धार हिंयै भड़ धीर।
रणखेतां पग रोपिया, राजेंदर रण वीर।।

माडधरा रा मानवी, रगत बहै वो रग्ग।
रण आयां आगै रहै, पाछा धरै न पग्ग।।

कटणौ पण हटणौ नहीं, वीरां जनम विसेस।
व्है सतियां वीरांगना, निपजै मुरधर देस।।

जाहर जायौ जांमणी, जादम कुळ जैसांण।
वाहर चढ हिम डूंगरां, नाहर राखी आंण।।

मोहनगढ महकी धरा, गरज्यौ जैसळमेर।
जादम रण में जूंझियौ, बंको 'राज' सुमेर।।

मही ऊजळी माड रा, जदुवंशी जाँबाज।
राजेन्द्र रण रासियौ, हेम डूंगरां गाज।।

हरवळ में तन होमियौ, माडधरा रै लाल।
अम्बर सूं ऊंचौ कियौ, भारत मां रौ भाल।।

कर कुरबांणी देस हित, पुहुमी ऊपर पोढ।
सज धज सुरग सिधावियौ, अंग तिरंगो ओढ।।

रगत सींच राखी धरा, हित चिंतक हिंदवांण।
सांवळसुत वड सूरमौ, भाटी कुळ रौ भांण।।

मुड़ियौ नहं पाछौ मरद, सुरपुर कियौ प्रयाण।
वाह! जादम जैसांण रा, राखी कुळ री कांण।।

मोभी जायौ माडधर, पारस जिसड़ौ पूत।
समरांगण तन सूंपियौ, सांवळ सुतन सपूत।।

अड़ी भुजा असमांन सूं, भड़ किवाड़ भाटीह।
वसुधा तणौ विछावणौ, गूंज उठी घाटीह।।

बेली! भ्राता! बैन वळ, वडभागी सुत वाम।
अंजसै वीरत ऊपरां, नवखंडा जस-नाम।।

गूंजै आभै घोर रव, बड़ड़ड़ गोळा बंब।
इण बेळा ऊभौ सही, खरौ राज अड़ीखंब।।

करी जदै करतूत खळ, रोकण वांरी राह।
सांमी छाती ऊभियौ, वाह राजेंदर वाह।।

चाढूं पुहुप सबद रा, अंतस रा अरमान।
प्रात उठंता नित करूं, सहीदां रौ सम्मान।।

शहीद बणै गळ सैहरो, मुगट सौवणो माथ।
नमै लोक त्रय नेम सूं, हरदम जोड़े हाथ।।

खरौ रयौ रणखेत में, पाछा दिया न पाव।
भाटी थैं सह्या भला, घट रै ऊपर घाव।।

जनम लियौ वौ जावसी, थिर जग रहै न कोय।
समर मरै जो सूरमा, अमर नाम जस होय।।

शक्तियों के योग की आवश्यकता है।

– आचार्य महाप्रज्ञ

हम लोग यह अनुभव करते हैं कि, अनैतिकता बहुत है, नैतिकता नहीं आ रही है। क्यों नहीं आ रही है? अनैतिकता का जीवन क्यों विकसित होता जा रहा है? यह द्रोपदी का चीर क्यों नहीं सिमट रहा है? कारण क्या है? कारण क्या हिन्दुस्तान की गरीबी है? या व्यवस्था की कोई त्रुटि है। या हमारी चेतना में कोई त्रुटि है, जिससे हमारी सामाजिक चेतना का कोई विकास नहीं हो रहा है या धर्म की कोई त्रुटि है जिससे हमारी धार्मिक आध्यात्मिक चेतना का विकास नहीं हो रहा है। कहीं न कहीं कमी जरूर है। पहले गरीबी मिटे या अनैतिकता यह बड़ा कठिन प्रश्न है। तर्कशास्त्र में एक सम्बन्ध का नाम है अन्योन्याश्रय सम्बन्ध।

किसी से पूछा गया–यह घोड़ा किसका है?

उत्तर मिला–जिसका मैं नौकर हूँ

'तुम किसके नौकर हो?'

'जिसका यह घोड़ा है।'

निर्णय कुछ भी नहीं निकला। ऐसी अनिर्णित स्थिति चल रही है कि निर्णय तक हम पहुँच ही नहीं पा रहे हैं कि पहले क्या हो। अगर हम यह प्रतीक्षा करें कि गरीबी मिटेगी और बाद में अनैतिकता मिट जायेगी तो यह बड़ी भूल होगी। क्या जो राष्ट्र विकसित हो गये हैं वहाँ अनैतिकता नहीं है? वहाँ छोटी अनैतिकता कम, किन्तु बड़ी अनैतिकता वहाँ बहुत ज्यादा है। राजस्थानी में एक कहावत है–'बड़ी रात का बड़ा तड़का' यह अनैतिकता मनुष्य के साथ जुड़ी हुयी बात है, जब तक हमारी चेतना का परिवर्तन नहीं होगा तब तक शोषण, उत्पीड़न, कुटिलता का समाधान संभव नहीं हो सकता।

क्या हम सचमुच चाहते हैं कि अनैतिकता मिटे? मेरे मन में एक प्रश्न है सचमुच समाज के मन में अभी यह चाह नहीं जगी है कि अनैतिकता मिटे। हम लोग चर्चा तो बहुत करते हैं, किन्तु क्या कोई ऐसी चाह जगी है, कोई ऐसा संकल्प जगा है कि जीवन में शोषण, उत्पीड़न और कुटिलता को नहीं आने देंगे। जब चाह प्रबल हो जाती है तो इनको समाप्त होना होता है। समाज का संकल्प जब बलवान बन जाता है तो स्थिति को बदलना पड़ता है। मैं तो कहता हूँ चाहे आपको अच्छा लगे या बुरा, जो लोग अधिकार पर बैठे हैं, चाहे वह सत्ता का अधिकार हो या पैसे का या धर्म का, उन सबके मन में ऐसी कोई प्रबल संकल्प-शक्ति नहीं जगी है, इतनी प्रबल चाह नहीं जगी है, जिससे अनैतिकता को मिटने का मौका मिले।

मैं आप लोगों से पूछना चाहता हूँ कि क्या किसी भी क्षेत्र में, जो भी महत्त्वपूर्ण क्षेत्र है और समाज का संचालन कर रहे हैं, धर्म का क्षेत्र, राजनीति का क्षेत्र, उद्योग या व्यवसाय का क्षेत्र–इनमें जो लोग बैठे हैं उनमें क्या इतनी तड़फ जगी है कि अनैतिकता मिटे? मुझे तो अभी नहीं लग रहा है। तड़फ के जगने के बाद भी अनैतिकता नहीं मिटे यह सोचा भी नहीं जा सकता।

व्यवस्था बदलेगी तब हम बदलेंगे किन्तु यह न 'भूतो न भविष्यति'। व्यवस्था का बदलना या बाहर से बदलना यह कोई पर्याप्त बात नहीं है। हमारी समस्यायें क्यों उलझती जा रही हैं? क्योंकि समस्याओं को सुलझाने का हमारा एकांकी दृष्टिकोण बन गया है। हम केवल बाहर को सुधारना चाहते हैं केवल बाहर को बदलना चाहते हैं, केवल व्यवस्था और परिस्थिति में परिवर्तन लाना चाहते हैं। किन्तु दूसरा पक्ष हमने भुला दिया। आदमी का पूरा व्यक्तित्व केवल बाहरी व्यक्तित्व नहीं है। वह भीतर जाता है। सारे विचार भीतर से पनपते हैं, बाहर से उद्दीपन मिलता है, बाहर से परिस्थितियाँ प्रेरित करती हैं, किन्तु पैदा नहीं करती। पैदा होना एक बात है और उद्दीपन या उत्तेजना मिलना दूसरी बात है। हमारे सारे के सारे भाव, सभी तरह का व्यवहार और आचरण-ये पैदा होते हैं भीतर में। इसलिये आज इस बात की अपेक्षा है कि स्थितियों और परिस्थितियों के बदलने के बावजूद एक ओर शस्त्र तेज दूसरी ओर ब्रह्मतेज होना चाहिये। वशिष्ट ऋषि ने कहा था–एक ओर चारों वेद और दूसरी ओर धनुष बाण साथ-साथ चल रहा है। दो शक्तियों के योग की आवश्यकता है सत्ता और धर्म सत्ता-दोनों का योग होना चाहिए। और इसमें व्यवस्था का परिवर्तन भी हो और हृदय का परिवर्तन भी हो।

आचार्य श्री तुलसी और अणुव्रत के पास कोई डंडा नहीं है। एक अकिंचन फकीर जिनके पास पैर टिकाने के

लिये भूमि भी नहीं है इनसे हम आश करें कि समाज को बदल देंगे, राष्ट्र को बदल देंगे यह कैसे संभव है? यह तो जिनके पास सत्ता है, दण्ड की शक्ति है, अधिकार है उनके लिये संभव है।

नियम, कानून बने हैं इनको व्यर्थ नहीं कहा जा सकता इनकी भी उपयोगिता है। कारावास या फांसी देने से समाज बदल जायेगा कहा नहीं जा सकता लेकिन हम किसी बात को एकांगी दृष्टि से न देखें। इनका भी अपना मूल्य है अपनी उपयोगिता है, किन्तु केवल कानून से ही सब कुछ नहीं होने वाला, इस सच्चाई को हम न भूलें। केवल कानून से कुछ नहीं होगा, उसके साथ कुछ और भी होना चाहिए।

भैंसों का मेला लगा था। एक आदमी गया, देखा।

भैंस अच्छी लगी। पूछा इसका मूल्य?

व्यापारी बोला-'चार हजार रुपये।' दूध कितना देती है? 'दूध तो बिल्कुल नहीं देती है।'

'तो कोई बच्चा है?' 'नहीं इसके कोई बच्छा नहीं है।'

'तो फिर मूल्य चार हजार रुपये क्यों?'

'महाशय इसका कैरेक्टर बहुत अच्छा है।'

कैरेक्टर बहुत अच्छा है, दूध नहीं है, बच्चा नहीं है। एक बात से काम नहीं चल सकता, सर्वांगीणता चाहिये, समग्रता चाहिये, टोटलिटी चाहिये। तो जरूरत इस बात की है कि व्यवस्था भी बदले और हृदय भी बदले।

हमें इस बात को स्वीकार करना होगा कि गरीब आदमी उतनी ज्यादा अनैतिकता नहीं करता जितना धनी आदमी। शायद सामान्य कर्मचारी उतनी अनैतिकता नहीं करता जितनी बड़े अधिकारी। क्योंकि उनके पास पावर है, सत्ता है अत: समस्या को सुलझाने का एकांगी प्रयास न हो। ऐसा व्यक्ति आन्तरिक दोषों के कारण करता है। आन्तरिक बीमारी का निदान नहीं होगा तब तक लगता नहीं कि शोषण, उत्पीड़न और कुटिलता का निदान हो सकेगा। इसमें दण्ड शक्ति के बजाय हृदय परिवर्तन कराना उपयुक्त होगा।

अणुव्रत आंदोलन के साथ प्रेक्षाध्यान भी जुड़ा है। यह प्रायोगिक है। यह न जैन का है न ब्राह्मण का है, न मुसलमान का, किसी का नहीं यह प्रायोगिक है। करो और देखो, हमारी यह धारणा रही है कि धर्म करो, परलोक में स्वर्ग मिल जायेगा, सीट रिजर्व हो जायेगी। आज भी न जाने कितने लोग धर्म के नाम पर स्वर्ग की सीट रिजर्वेशन की बात करते हैं, जबकि रेल में सीट रिजर्वेशन कराना कितना मुश्किल है। धर्म गुरुओं के पास न जाने कितनी रिश्वत आती है स्वर्ग के रिजर्वेशन की। लेकिन अणुव्रत और प्रेक्षाध्यान का धर्म प्रायोगिक धर्म है। नकद धर्म, उधार का नहीं। करो और देखो-अनुभव करो।

संकल्प शक्ति को जगाने, अपनी चाह प्रबल करने से ऐसा संभव है कि समाज में आई कुरीतियाँ मिट सके। आप सोचेंगे कि कुछ लोगों की तड़फ से क्या होगा? कुछ लोगों में तड़फ जगेगी तो सब में जगेगी। एक पौराणिक कहानी है। सुभोम नाम का राजा जो चक्रवर्ती भी था समुद्र के रास्ते जा रहा था और कहा जाता है कि सोलह हजार देवता उसके रथ को खींच रहे थे। एक देवता ने सोचा पन्द्रह हजार नौ सौ निनानवे लोग इस रथ को खींच रहे हैं, मैं अकेला इसे छोड़ दूंगा तो क्या होगा? एक के मन में आया तो सभी के मन में आ गया। सबने एक साथ छोड़ा और चक्रवर्ती पानी में डूब गया।

एक की बात इतनी संक्रान्त होती है। विचार के इस संक्रमणशील युग में उसके विश्लेषण के बाद हम विश्वास नहीं कर सकते। तो तड़फ जागे, हमारी चाह प्रबल हो, हमारी संकल्पशक्ति जागे।

दूसरी बात-बाहर ही न खोजें। समस्या के समाधान को भीतर भी खोजें। चर्चा में एक बात उठी कि मनुष्य के व्यवहार और आचरण का *Control* हमारी परिस्थितियाँ नहीं करती। सामाजिक स्थितियाँ तो उभरती है। वास्तव में उसका *Control* होता है हमारे व्यवहार पर, आदतों और आचरण पर। हमारी अन्त:स्रावी ग्रंथियों (*Indocrine System Glands*) के हार्मोन्स में जो सिक्रेशन होता है, उनका कन्ट्रोल और प्रभाव होता है। व्यवस्था बदलने की बात और मनुष्य के आन्तरिक तत्वों और रसायनों को बदलने की बात-दोनों की संयुक्त बात करें तो इस वैज्ञानिक युग में एक नया दर्शन, नयी विचारधारा समाज के सामने, राष्ट्र के सामने प्रस्तुत कर सकते हैं। मुझे लगता है कि यह समाज और राष्ट्र का एक सर्वांगीण दर्शन बन सकता है और इसके द्वारा शोषण, उत्पीड़न और कुटिलता की समस्या सुलझाने का भी एक मूल्यवान उपाय चाहे वह छोटा ही हो, हमारे हाथ लग सकता है।

– संकलन : ***जैसू खानपुर***

प्रार्थना का स्वरूप

– संकलित

प्रार्थना की नहीं जाती, अपितु स्वतः होती है। प्रार्थना ही प्रार्थी का स्वरूप है। प्रार्थना प्रार्थी को लक्ष्य से अभिन्न करने में समर्थ है। प्रार्थना वास्तविकता का आदर करने से स्वतः जाग्रत होती है। मृत्यु के भय से भला कौन मानव भयभीत नहीं है? अभय होने की माँग मानवमात्र में स्वभाव से विद्यमान है। मृत्यु के भय से रहित करने में कोई परिस्थिति हेतु नहीं है। इस कारण सभी परिस्थितियों के आश्रय तथा प्रकाशक की ओर दृष्टि स्वतः जाती है। मानव कह बैठता है,–'कोई ऐसा होता जो मुझे अभय-दान देता।' अतः भयहारी में आस्था स्वतः होती है। आस्था की पूर्णता में ही श्रद्धा तथा विश्वास निहित है। श्रद्धा-विश्वासपूर्वक भयहारी को स्वीकार कर अभय होने की तीव्र माँग ही वास्तविक प्रार्थना है।

यह सभी को विदित है कि कामना पूर्ति कर्म सापेक्ष तथा निष्कामता विवेकसिद्ध है। किन्तु कर्म सामग्री कर्त्ता को किसी विधान से मिली है। मिली हुई वस्तु को व्यक्तिगत मान लेना और दाता को स्वीकार न करना 'प्रमाद' है। इस प्रमाद की निवृत्ति आए हुए दुख के प्रभाव से स्वतः होती है और फिर दुखी-'हे दुखहारी!' पुकारने लगता है। भला इस सत्य को कौन नहीं अपनाएगा? सुख की दासता तथा दुख के भय के रहते हुए सभी प्रार्थी हैं। इस दृष्टि से मानवमात्र प्रार्थी है। अब विचार यह करना है कि हमारी माँग में वास्तविकता का अनादर तो नहीं है? अर्थात् विवेक विरोधी माँग तो नहीं है? दुख के अभाव से ही सुख का प्रलोभन नाश होता है और फिर स्वतः दुखी दुखहारी से अभिन्न होता है। यह मंगलमय विधान है। दुख का मूल भूल है अथवा यों कहो कि भूल मिटाने के लिये दुख के वेष में दुखहारी ही आते हैं और सुख के प्रलोभन को खाकर, दुखी को अपनाकर योग, बोध, प्रेम से अभिन्न कर देते हैं।

भूल का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। निज ज्ञान का अनादर, मिली हुई स्वाधीनता का दुरुपयोग तथा दैवी गुणों को व्यक्तिगत मान लेना ही तो भूल है। भूल-जनित वेदना में ही प्रार्थना निहित है। प्रार्थना से मानव मात्र का सर्वतोमुखी विकास होता है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थ की परावधि एकमात्र प्रार्थना में ही निहित है। मिली हुई वस्तु, योग्यता, सामर्थ्य आदि का सदुपयोग पुरुषार्थ का सदुपयोग है। मिले हुए को अपना मानना भूल है। जिसने दिया है, वह अपना है। मानव प्रमाद से उन्हें भूल जाता है जो सदा-सदा से अपने हैं और परिवर्तनशील, उत्पत्ति-विनाश-युक्त वस्तु, अवस्था, परिस्थिति आदि को अपना मान लेता है। वे कितने अपने हैं कि सब कुछ देने पर भी भास नहीं होने देते कि मैं दाता हूँ? वे कितने उदार हैं कि उनको स्वीकार बिना किए भी वास्तविक माँग को पूरा करते हैं। उन्हीं के प्रकाश में चराचर जगत प्रार्थी है। प्रार्थी अपनी माँग से अभिन्न हो जाता है। यह दाता की महिमा है। स्तुति और उपासना प्रार्थना में ही निहित है। प्रार्थना की पूर्ति में ही स्तुति उदय होती है। प्रार्थना स्वतः सर्व समर्थ से सम्बन्ध जोड़ देती है। यही तो उपासना है। प्रार्थना उससे सम्बन्ध जोड़ देती है जिसे प्रार्थी नहीं जानता, अपितु जो प्रार्थी को जानता है।

संदेह की वेदना होने पर जिज्ञासा के रूप में प्रार्थना ही अभिव्यक्त होती है। ज्यों-ज्यों जिज्ञासा सबल तथा स्थायी होती जाती है, त्यों-त्यों सभी निर्बलताएँ स्वतः नष्ट होती जाती हैं। जिस काल में जिज्ञासा से भिन्न जिज्ञासु का कोई और अस्तित्व ही नहीं रहता, उसी काल में जिज्ञासा की पूर्ति स्वतः हो जाती है, अर्थात् तत्वज्ञान से अभिन्न हो जाता है, यह प्रार्थना की ही महिमा है। पुरुषार्थ 'अहं' को पोषित करता है और प्रार्थना 'अहं' को खाकर प्रार्थी को लक्ष्य से अभिन्न करती है। इतना ही नहीं, पुरुषार्थी पुरुषार्थ के आरम्भ से पूर्व प्रार्थी होता है। कारण कि सामर्थ्य के सदुपयोग से भिन्न पुरुषार्थ कुछ नहीं है। सामर्थ्य की माँग भी तो प्रार्थना ही है। इस दृष्टि से प्रार्थना से ही जीवन का आरम्भ होता है और प्रार्थना से ही पूर्णता प्राप्त होती है।

प्रार्थना प्रार्थी की सभी निर्बलताओं का अन्त कर निर्दोषता से अभिन्न करती है। इतना ही नहीं प्रार्थना से प्राप्त निर्दोषता साधक को गुणों के अभिमान से रहित कर देती है। अत: सर्वांश में दोषों का अन्त एकमात्र प्रार्थना से ही साध्य है।

प्रत्येक संकल्प-पूर्ति का सुख नवीन संकल्प को जन्म देता है और अन्त में संकल्प-पूर्ति ही शेष रहती है। इस दृष्टि से सुख और दुख में आबद्ध प्राणी शान्ति नहीं पाता। यद्यपि शान्ति, स्वाधीनता एवं सरसता आदि की माँग मानव में बीज रूप से विद्यमान है, उस विद्यमान मांग को विकसित करना ही प्रार्थना है। प्रार्थना शरीर-धर्म नहीं है, अपितु मानव का स्वधर्म है। प्रार्थना का प्रभाव शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि पर होता है। इस कारण प्रत्येक मानव प्रत्येक परिस्थिति में प्रार्थना करने में स्वाधीन और समर्थ है, अर्थात् प्रार्थना से भिन्न मानव का अस्तित्व नहीं है; किन्तु जब मानव अपनी स्वाभाविक माँग को भूलजनित कामनाओं से शिथिल कर देता है, तब उसे प्रार्थना करनी पड़ती है। वास्तविक माँग के लिये की हुई प्रार्थना वर्तमान में फलवती होती है। कारण कि प्रार्थना वास्तविकता से दूरी, भेद, भिन्नता नहीं रहने देती। प्रार्थना मौजूद की होती है और मौजूद से होती है। भक्तों को भगवान, जिज्ञासुओं को तत्वज्ञान, योगियों को योग नित्य प्राप्त है। अत: प्रार्थी बड़ी ही सुगमता के साथ मानव जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है।

जो सदैव सभी का अपना है, जिसे मानव भले ही स्वीकार करे अथवा न करे, किन्तु मानव की माँग अर्थात् प्रार्थना किसी न किसी रूप में स्वत: होती है। पर यह रहस्य तभी स्पष्ट होता है, जब मानव शान्त होकर अपनी ओर देखे। अपनी ओर देखने से अपनी वर्तमान दशा का, वास्तविक माँग का तथा अपनी भूल का स्वत: ज्ञान होता है, जिसके होते ही अपने आप प्रार्थना का उदय होता है, जो प्रार्थी को भूल रहित कर प्रार्थी से अभिन्न कर देती है। प्रार्थना आस्तिकवाद की दृष्टि से प्रीति से भिन्न कुछ नहीं है और अध्यात्मवाद की दृष्टि से प्रार्थना ही प्रार्थी को असंगता प्रदान करती है। भौतिकवाद की दृष्टि से प्रार्थना प्रार्थी को विश्व-जीवन के साथ अभिन्न करती है। इस दृष्टि से प्रार्थना प्रेम होकर प्रेमास्पद से, असंगता होकर निज स्वरूप से और उदारता होकर विश्व से अभिन्न करती है। यह निर्विवाद सत्य है।

(एक महात्मा का प्रसाद)

आराधना का तरीका

श्रीरामकृष्ण परमहंस से एक जिज्ञासु ने प्रश्न किया, ''महाराज, क्या संसार के कार्यों में व्यस्त रहते हुए ईश्वर की आराधना सम्भव है?''

''क्यों नहीं!'' – परमहंसदेव ने हँसते हुए उत्तर दिया, ''ग्रामीण स्त्री को तो तुमने ढेंकी से चूड़ा बनाते हुए देखा ही होगा। वह अपने एक हाथ से चूड़ा पलटती जाती है तथा दूसरे हाथ से बच्चे को गोदी में लेकर दूध पिलाती रहती है। यदि कोई पड़ोसिन या अन्य व्यक्ति उस समय उसके पास आ जाता है, तब वह उससे बातें भी करती जाती है। ग्राहक आने पर वह उससे हिसाब भी करती है। किन्तु उसका कार्य पूर्ववत् चलता रहता है। इन सब कामों के करते रहने पर भी उसका मन हर समय ओंखली और मूसल में ही लगा रहता है। वह जानती है कि यदि थोड़ी सी भी असावधानी बरती गयी, तो मूसल हाथ पर गिरेगा और हाथ टूट जायेगा।''

''इसी तरह मनुष्य को अपने काम करने चाहिए, पर अपना मन हर समय भगवान् में लगाकर रखना चाहिए। यही आराधना का सच्चा तरीका है।''

अपनी बात

हमारे भीतर एक अभाव है। दुख यह नहीं है कि बाहर अभाव है। दुख यह नहीं है कि बाहर चीजें कम हैं। दुख यह है कि भीतर सम्पूर्ण अभाव है। इस तथ्य के प्रति जागना जरूरी है। जो मनुष्य इस तथ्य के प्रति जागता है कि मैं भीतर के खालीपन को भरने की कोशिश में लगा हूँ, इसे यह सोच लेना चाहिए कि क्या खालीपन कभी भरा जा सकता है? और ऐसा खालीपन जो भीतर है और उसे भरने की चेष्टा बाहर है। बाहर इकट्ठा करूंगा तो भीतर कैसे जाएगा? क्या एक भी वस्तु आज तक मनुष्य के भीतर जा सकी है? जहाँ तक वस्तु जा सके, समझ लो वहाँ भीतर नहीं आया है। वहाँ तक सब बाहर है क्योंकि वस्तु बाहर है। मनुष्य के भीतर कुछ भी न जा सका है। भीतर का अर्थ भी यह होता है कि जहाँ कोई भी वस्तु न जा सके। वह आत्यन्तिक रूप से आंतरिक है, उसमें कुछ भी बाहर से नहीं जा सकता। वही आत्मा है। उसको ही भरने की बाहर से कोशिश असफल हो जाती है।

फिर क्या हो? फिर क्या रास्ता है? ऊब जाते हैं लोग, घबरा जाते हैं लोग। फिर धन को छोड़ते हैं, दुकान को छोड़ते हैं, मकान को छोड़ते हैं, साधु हो जाते हैं, संन्यासी हो जाते हैं। घबरा गए जीवन से, संसार से। निन्दा करने लगते हैं कि व्यर्थ है, संसार में दुख ही दुख है। तब वे मोक्ष की खोज में, ईश्वर की खोज में जाते हैं। उसी से अपने अभाव को भरने की कोशिश में लग जाते हैं, भाव का काम जारी रहता है। पहले धन से अब मोक्ष से भरना चाहते हैं। मोक्ष कैसे मिल जाए, ईश्वर कैसे मिल जाए, सत्य कैसे मिल जाए, मुक्त कैसे हो जाऊँ, बन्धन कैसे टूट जाएँ, दुख से अलग कैसे हो जाऊँ? लेकिन बुनियादी बात अभी भी कायम है। वे जैसे भीतर हैं वैसे ही होने को अभी भी राजी नहीं हैं। भीतर जो रिक्तता है, उसके साथ वही होने को राजी नहीं हैं। अब वे मोक्ष चाहते हैं, स्वर्ग जाना चाहते हैं, देवता होना चाहते हैं, कुछ और होना चाहते हैं। अभी भी कुछ होना चाहते हैं। अभी होने की दौड़ जारी है। धन की चाह अब मोक्ष बन गई पर चाह मौजूद है।

संन्यासी और संसारी, दोनों के भीतर चाह मौजूद है। जहाँ चाह है, वहाँ संसार है। वे दौड़ते हैं, वे भी परेशान होते हैं, उनको भी कुछ मिलता नहीं। कोई फर्क नहीं पड़ा। पहले इधर धन को खोजते थे, अब उधर दूर के धन को खोजने लगे हैं। भीतर के धन से न पहले राजी थे न अब राजी हैं। मोक्ष खोजा नहीं जा सकता। व्यक्ति उस अभाव के साथ जीने को राजी हो जाता है जो भीतर है, वह आदमी उसी क्षण मोक्ष को उपलब्ध हो जाता है, ऐसा प्राप्त पुरुषों का कहना है। पर जो उससे दौड़ रहा है, वह चाहे किसी दिशा की दौड़ हो, वह अपने आप से ही दौड़ रहा है। भीतर जो अभाव है, उससे भागे नहीं। भागने वाला नहीं पहुँचता है। उस अभाव में प्रवेश करें। भागने के लिये बाहर जाना पड़ता है अभाव से। प्रवेश के लिये भीतर जाना पड़ता है अभाव में। अभाव में प्रवेश करें, रुकें, ठहरें। अपने ना कुछ होने से जो सहमत हो जाता है, वह आदमी धार्मिक है।

चीन में एक सन्त हुए हैं लाओत्से। अनेक लोगों ने उस समय के राजा को कहा कि आप लाओत्से से मिलें, बहुत ही विशिष्ट है, बहुत अद्‌भुत, बहुत असाधारण व्यक्ति है। अनेक-अनेक लोगों ने कहा तो राजा भी प्रभावित हो गया। वह भी गया मिलने के लिये। मिलने के लिये गया तो हैरान हो गया। लाओत्से उस समय झोंपड़े के बाहर गड्ढा खोद रहा था। साधारण आदमी था, बिल्कुल साधारण। कोई असाधारण बात नजर नहीं आई। राजा ने अपने साथ आए लोगों से कहा, यह आदमी तो बिल्कुल साधारण मालूम होता है। यह तो कुछ असाधारण नहीं दिखाई पड़ता। न तो इसके सिर के आस-पास प्रकाश का गोल घेरा है, जैसा अवतारों के आसपास होना माना जाता है। सीधा-सादा सा किसान दिखता है। न इसकी वेशभूषा में कुछ विशेषता है, न उसकी देह में, शरीर में कोई विशेषता है। यह बात क्या है? तुम कहाँ ले आए मुझे? यह बातचीत भी बड़ी साधारण करता है। कहता है, अब मौसम अच्छा आ गया, अब बीज बोने का समय आ गया। यह क्या बातें कर रहा है-कोई अध्यात्म, कोई आत्मा, कोई ब्रह्म-ऐसा कुछ नहीं।

साथ आए लोगों ने कहा कि इस आदमी की यही खूबी है कि यह बिल्कुल साधारण है और ऐसा आदमी पृथ्वी पर होता ही नहीं जो बिल्कुल साधारण हो। इसकी यही विशिष्टता है। इसकी यही असाधारणता है कि यह बिल्कुल साधारण आदमी है। साधारण से साधारण आदमी भी साधारण होता नहीं है। यह बिल्कुल ही साधारण है।

राजा ने लाओत्से से पूछा तुम साधारण कैसे हुए? उसने कहा साधारण तो कोई हो नहीं सकता, क्योंकि होने की कोशिश करेगा तो असाधारण हो जाएगा। बात ही गलत पूछते हो। अगर कोई साधारण होना चाहे तो असाधारण हो जाएगा। सरल होना चाहेगा तो कठिन हो जाएगा होने की चेष्टा की तो गड़बड़ है। उसने कहा, मैंने तो होने की सब चेष्टा छोड़ दी। माना कि सब व्यर्थ है, जो हूँ वही ठीक है। मिट्टी तो मिट्टी, पत्थर तो पत्थर, पत्ता तो पत्ता, जो हूँ सो ठीक है। मैंने समझा कि दौड़कर कोई कहीं पहुँचा नहीं, तो दौड़ छूट गई। साधारण मैं हुआ नहीं। असाधारण होने की व्यर्थता मुझे दिखाई पड़ी। बस बात खत्म हो गई।

राजा ने पूछा, कैसे यह घटना घटी? तो उसने कहा, मैं एक जंगल में गया। कुछ मित्र भी मेरे साथ थे। वहाँ जाकर मैंने देखा कि अनेक-अनेक वृक्षों को बढई काटते हैं। मजदूर लगे हुए हैं, वृक्ष काटे जा रहे हैं। बड़े सीधे वृक्ष हैं, आकाश को छूने वाले, मोटे वृक्ष, बड़े सीधे, सुन्दर, सब काटे जा रहे हैं। एक वृक्ष बहुत बड़ा था। इतना बड़ा कि उसके नीचे सैकड़ों बैलगाड़ियाँ ठहर सकती थी। उसकी बड़ी घनी छाया थी। मैंने मित्रों से पूछा कि इस वृक्ष को किसी ने नहीं काटा? क्या बात हो गई? सब वृक्ष काटे जा रहे हैं, मजदूर लगे हुए हैं, इस वृक्ष को कोई क्यों नहीं काटता? मैंने उन बढइयों से जाकर पूछा कि इस वृक्ष को क्यों नहीं काटते हो? उसने कहा यह वृक्ष बिल्कुल साधारण है। यह किसी मतलब का ही नहीं है। इसके पत्ते जानवर तक नहीं खाते। इसकी लकड़ियाँ सब टेढी-मेढी हैं कि उनसे कोई मेज कुर्सी तक नहीं बनती, कोई द्वार-दरवाजे नहीं बनते। ऐसा गड़बड़ वृक्ष है कि इसको जलाओ तो इतना धुंआ फेंकता है कि आग निकलती नहीं, धुंआ ही धुआ निकलता है। यह बिल्कुल ही बेकार है, बिल्कुल ही साधारण है। इसको कोई नहीं काटता तो यह बड़े से बड़ा होता जाता है। और ये वृक्ष जो सीधे हैं, इन्होंने आकाश को छूने की कोशिश की उनको काटते हैं। इनसे खम्बे बनते हैं। घरेलू सामान बनते हैं। लाओत्से ने कहा, बस उसी दिन से मैं समझ गया कि अगर बढना है तो साधारण हो जाओ, नहीं तो काटे जाओगे। अगर कुछ होना है तो ना कुछ हो जाओ। लोग तुम्हें भूल जाएंगे और तुम बढोगे। तुम्हारे नीचे सैकड़ों बैल गाड़ियाँ ठहर सकेंगी, छाया ले सकेंगी। उस व्यर्थ वृक्ष के नीचे, जिसका कोई उपयोग नहीं, हजारों को छाया मिलेगी।

हम जैसे हैं, उस होने को स्वीकार करें और फिर सामाजिक संस्था में कार्यरत रहें तो हम बढेंगे, लोग छाया पाएंगे। लेकिन कुछ चाह है, पद की, प्रतिष्ठा की, धन की, राजनीति की तो ऐसे वृक्ष संस्थाओं में छाया नहीं दे पाएंगे, काटे जाएंगे। भीतर, जो आत्यन्तिक रूप से आंतरिक है वहाँ ये कुछ भी न पाएंगे। आत्मा को भरने की बाहर की चाह की कोई भी कोशिश असफल ही रहेगी। तो अपने भीतर के अभाव में प्रवेश करें। बाहर से वह नीं भरा जाएगा, भीतर प्रवेश से ही भरा जाएगा।

*

जो सुख आरम्भ में विष की भाँति है और अंत में अमृत की भाँति और जिससे आत्मा और बुद्धि को शान्ति मिलती है वह सुख सात्विक है। जो सुख आरम्भ में अमृत की भाँति है और अन्त में विष की भाँति वह राजस सुख है। जो सुख आरम्भ से अन्त तक आत्मा को केवल मोह, निद्रा, आलस्य में डाले रखता है वह तामस सुख है।

– श्रीमद्भगवद्गीता

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	स्थान	मार्ग आदि
01	चार दिवसीय (बालिका)	22.12.2019 से 25.12.2019	**पिपलिया मण्डी** (म.प्र.)	जिला–मन्दसौर। नेचुरल पब्लिक स्कूल प्रांगण। सम्पर्क– महेन्द्रसिंह फतेहगढ–9926685051 नरेन्द्रसिंह सोलंकी–7000207921 कृष्णपालसिंह मुंदेड़ी–8085207733
	गत अंक में यह 26.12.2019 से मन्दसौर में होना सूचित था, अब इस प्रकार होगा।			
02	चार दिवसीय	22.12.2019 से 25.12.2019	**महागढ** (म.प्र.)	जिला–नीमच। जीएसएम स्कूल, मनासा–मन्दसौर मार्ग सम्पर्क– ईश्वरसिंह हाड़ी पिपलिया–9425974693 मंगलसिंह महागढ–8349912938
	गत अंक में यह ताल में होना सूचित था, अब स्थान बदला है।			
03	चार दिवसीय (बालिका)	25.12.2019 से 28.12.2019	**बूंदी**	शिवम मैरिज गार्डन, नैनवा रोड़, बूंदी सम्पर्क– चन्द्रावती कंवर–9602064222 पृथ्वीराजसिंह राजावत–9950663010
04	सात दिवसीय	25.12.2019 से 31.12.2019	**भोजराजसिंह की ढाणी** (जैसलमेर)	रामगढ से जैसलमेर रूट पर।
05	सात दिवसीय	25.12.2019 से 31.12.2019	**सिरसला** (नागौर)	
06	सात दिवसीय	25.12.2019 से 31.12.2019	**भादला** (बाकानेर)	बीकानेर में गंगानगर चौराहे से बसें। नोखा में लखारा चौक से बस। सम्पर्क– राजेन्द्रसिंह भादला–9035748010
07	सात दिवसीय	25.12.2019 से 31.12.2019	**महरोली** (सीकर)	
08	चार दिवसीय	26.12.2019 से 29.12.2019	**गैलाना** (म.प्र.)	तहसील सुवासरा (मंदसौर) आशापुरा माताजी मंदिर। सम्पर्क– दयालसिंह सेदरा–9977800497 सुमेरसिंह घसौई–9926738399 नाहरसिंह अंगारी–9754218326
09	चार दिवसीय	28.12.2019 से 31.12.2019	लाखेरी	महाराज मूलसिंह डिग्री कॉलेज, लाखेरी सम्पर्क– बुद्धसिंह हाडा–9530222327 त्रिभुवनसिंह हाडा–9828024189
10	दंपती शिविर	02.01.2020 से 05.01.2020	आलोक आश्रम (बाड़मेर)	(35 वर्ष की दंपतियों के लिये)
11	दंपती शिविर	09.01.2020 से 12.01.2020	आलोक आश्रम (बाड़मेर)	(35 वर्ष की दंपतियों के लिये)

दीपसिंह बेण्यांकाबास

शिविर कार्यालय प्रमुख (श्री क्षत्रिय युवक संघ)

प्रेम पौशाक

समस्त राजपूती पौशाकों के होलसेल विक्रेता

भँवर सिंह पीपासर
9828130003

रिडमल सिंह महणसर
9829027627

शॉप नं. 93, जोधपुर स्वीट्स
के सामने, खातीपुरा रोड़,
झोटवाड़ा, जयपुर

दातारसिंह दुगोली
7339926252

गली नं. 16 कॉर्नर,
बी.जे.एस. कॉलोनी,
पावटा बी रोड़,
जोधपुर

Rajwara Royal Camp & Events

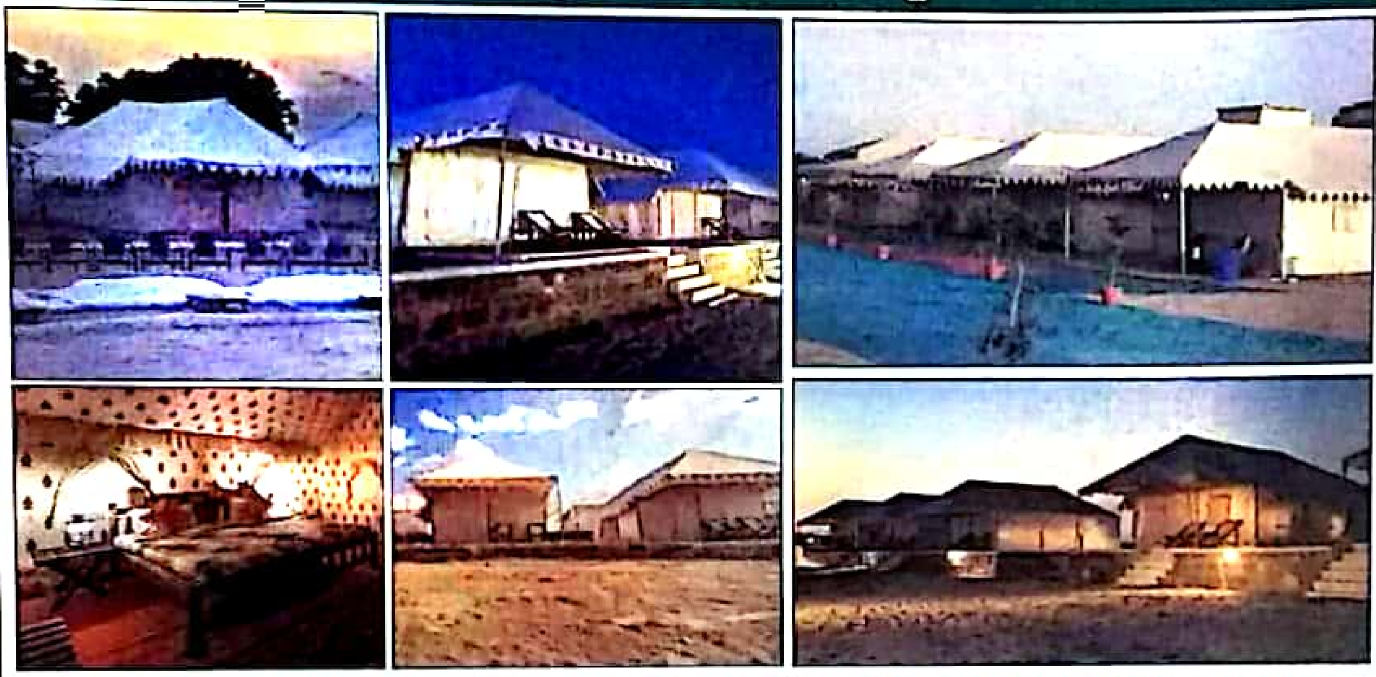

Regional Melas, Forest Camping, Royal Wedding and one of the highlights of your experience in India

Yogendra Singh Nathawat (Benyakavas) (M) 9785750572, 8619454944

Off. : F-21, Govindam Tower, Kardhani Scheme, Govindpura, Kalwar Road, Jhotwara, Jaipur

E-mail : rajwararoyalcamp@gmail.com | Website : www.rajwararoyalcamp.com

दिसम्बर, सन् 2019

वर्ष : 56, अंक : 12

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा,

जयपुर-302012

दूरभाष : 0141-2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com

Website : www.shrikys.org

श्रीमान्

32.6517

शुल्क समाप्त 4 मार्च 2020 SS

Abhay Singh Ji Rathore

Ist Floor, Plot NO. 719/1.

Sector-4/C , Gandhinagar (Gujrat)

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए-8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक-लक्ष्मणसिंह